ग्रामीण पाठकों के लिए

समूह माध्यम

एस. दिवाकर

अनुवाद

डी.एन. श्रीनाथ

चित्रांकन

संतोष गुप्ता

एकः सूते सकलम्

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-3134-5

पहला संस्करण : 2000 (शक 1921)

रु. 9.00

(O) Samooha Madhyamagalu (Kannada)

Samooh Madhyam (*Hindi*)

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

अनुक्रमणिका

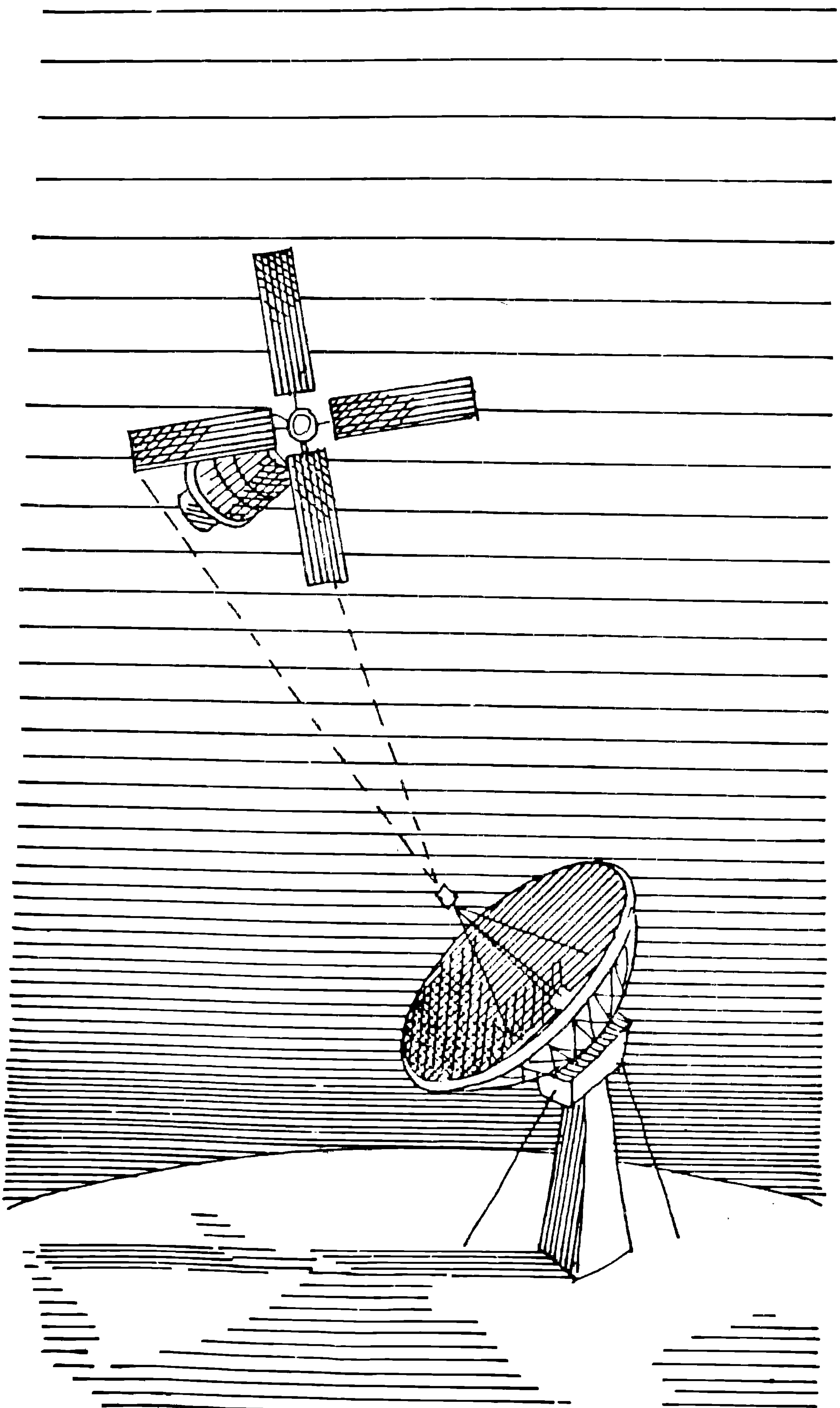
1. प्रवेश 5

2. समाचार पत्र 10

3. चलचित्र 26

4. रेडियो 40

5. दूरदर्शन 53



प्रवेश

लगभग एक शताब्दी पीछे के समाज की कल्पना कर लीजिए, तब हमारे देश में कुछ ही शहर थे। आज की स्थिति को देखने पर यह कहना शायद मुश्किल हो जाता है कि ये शहर हैं। उस जमाने में औसतन पिचानबे फीसदी लोग गांवों में बसते थे। एक-एक गांव एक एक छोटी दुनिया के समान था। उस दुनिया में ज्यादातर लोग खेतीबाड़ी पर ही निर्भर थे। बारिश, सर्दी, गर्मी—मौसम के अनुसार उनकी जीवन शैली में भी परिवर्तन होता था। गांव में किसी-किसी को मात्र पढ़ना आता था। वे लोग पटवारी या गांव के मुखिया होते थे। ऐसी हालत थी कि उनके बिना सरकार से संपर्क साधना ही संभव नहीं था। लोगों को बाजार या शहर जाना हो तो घोड़े पर चढ़ना पड़ता था या बैलगाड़ी लेनी पड़ती थी। तब उनकी जीवन की जरूरतें भी ज्यादा नहीं थीं। मंदिर में पूजा करने के लिए एक पुजारी; हल का फाल, हंसिया आदि बनाने के लिए एक लोहार; बैलगाड़ी, चरखा, चौखी आदि बनाने के लिए एक बढ़ई; मिट्टी के बर्तन बनाने वाला कुम्हार; फसल के मौसम में नाचना और नाटक खेलने वाले कुछ लोग; खेत में पानी छोड़ने के लिए सरकारी कर्मचारी—इस प्रकार कुछ ही लोग अपने खास पेशे और कुशलता से गांव की जिंदगी में पूर्णता लाते थे। संक्षेप में, उनका अपना यही संसार था; संपूर्ण संसार।

लेकिन आज हालात पूरी तरह बदल गए हैं। जब हम सुबह

उठते हैं तो हमें चाय के साथ अखबार चाहिए। एक ही गांव के रहने वालों के साथ ही नहीं, दूर-दराज में रहने वालों के साथ बातें करने के लिए टेलीफोन चाहिए। देश-विदेश की खबरें जानने, संगीत सुनने, दिल बहलाने वाले कार्यक्रम देखने के लिए रेडियो और दूरदर्शन चाहिए। हजारों मील स्थित दूर देश जाने के लिए हवाई जहाज चाहिए। आज कोई नहीं पूछता कि भारत के एक गांव से न्यूयार्क के लिए कितने मील का अंतर है, बल्कि पूछता है कि कितने घंटों का सफर है। इसी प्रकार छायाचित्र, सिनेमा, टेलीग्राफ, कंप्यूटर, फैक्स, इ-मेल आदि समूह माध्यम कहलाते हैं। ये सभी हमारे विशाल संसार को हमारी आंखों के सामने और हमारी समझ के निकट लाते हैं।

बीसवीं सदी का यह युग विज्ञान का युग है, साथ ही यह समूह माध्यमों का युग भी है। अखबार देश-विदेश की खबरें लाते हैं। दूरदर्शन रंग-बिरंगी दुनिया को आंखों के सामने खड़ा करता है। रेडियो हमारे मन पर असर करनेवाले विषयों को सुनाता है। सिनेमा तो परदे पर हम और आप जैसे लोगों की कहानियों को दिखाकर हमें समानांतर लोक में ले जाता है। टेलीफोन, कंप्यूटर आदि साधन शीघ्र संपर्क साधने में सहायक हैं। आदमियों के बीच संबंध स्थापित करने में, परस्पर विचार-विनिमय करने में सहायक और एक दूसरे को प्रभावित करनेवाली सारी विधियां 'संपर्क' शब्द में शामिल हैं। संपर्क के साथ मनोरंजन, ज्ञान, आवश्यक जानकारी आदि भी समूह माध्यम देते हैं।

कभी समाज के कुछ लोगों के हाथ में ही आर्थिक अधिकार होते थे। पढ़े-लिखे कुछ लोगों को ही सरकार के कार्यों की जानकारी होती थी। आम आदमियों को अपने मूलभूत अधिकार और कर्तव्यों

का पता ही न रहता था। उन्हें सरकार की प्रगति का भी पता न चलता था। इसे शिक्षितों का अशिक्षितों पर चलानेवाला अधिकार कहा जा सकता है। समूह माध्यमों के कारण इस स्थिति में परिवर्तन होना ही था। राजाओं का शासन खतम होकर, देश स्वतंत्र हुआ। और लोकतंत्र की नींव पड़ी, इसमें भी इन साधनों का विशेष रूप से योगदान रहा।

इस सदी के चौथे दशक में समूह माध्यम सचमुच 'सामाजिक' असर डालने लगे। धीरे-धीरे यह असर इतना गहरा हुआ कि आज इन साधनों के बिना हमारी जिंदगी अधूरी होगी। किसी दूर देश में होनेवाले फुटबाल खेल को हम अपने घर के एक कमरे में बैठकर देखते हैं। अखबार हमारे मंत्रियों के भाषण, तापमान, दुर्घटना, देश के हालचाल आदि खबरों के साथ आते हैं। कोई दुखी नहीं होता कि अमरीका में रहनेवाले बंधु ने पत्र नहीं लिखा; तुरंत उससे फोन पर बातें करते हैं। देश-विदेश के लोगों के रहन-सहन, संस्कृति, देखने लायक स्थान आदि आज हमारे लिए अपरिचित नहीं है। वाल्ट डिस्ने का 'मिकी माउस', 'डोनाल्ड डक' आज के हमारे कपड़ों पर भी शोभित हैं। हमारे अमिताभ बच्चन के समान हालीवुड की एलिजाबेथ टेलर, जोडी फास्टर से भी हम खूब परिचित हैं। हमें आज जापान की 'सूमो' कुश्ती का पता है। आस्ट्रेलिया के आदिवासियों का पता है, दक्षिण ध्रुव की हिमराशि, स्पेन के सांडों की लड़ाई, ब्राजील का अमेजान जंगल—सब मालूम है और हाल ही में अमरीका के 'पात-फाइंडर' द्वारा मंगल ग्रह पर उतरकर, वहां से खींचकर भेजी गई तस्वीरों को तुरंत ही हमने देखा है। अगर समूह माध्यम न हो तो क्या यह संभव होता?

समूह माध्यमों में अखबार, चलचित्र, रेडियो और दूरदर्शन प्रमुख

हैं। आज ये साधन कितना गहरा असर डाल रहे हैं, ये कहना आसान नहीं है। जहां पर असर रहता है, वहां पर परिणाम का भी होना अनिवार्य है। परिणाम अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। जो लोग समूह माध्यमों के बारे में कहते हैं वे तो उनके अच्छे परिणामों का ही उल्लेख करते हैं। साक्षरता, देश की प्रगति, शिक्षा की प्रगति, लोगों को उनके अधिकारों की जानकारी, उन्नति-विकास के कामों का ब्यौरा, खेती, परिवार-नियोजन आदि की सफलता—संक्षेप में कुल मिलाकर लोगों में समझने की जो शक्ति बढ़ी है उनकी ओर इशारा करते हैं। वैसे यह तो नहीं कह सकते हैं कि इन माध्यमों के बुरे परिणाम नहीं हुए हैं। जिनमें अधिकार केंद्रित हुए हैं, वे माध्यमों को अपनी भलाई के अनुसार उपयोग में लाते हैं, इसके कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। दूसरे महायुद्ध के दौरान हिटलर जैसे सत्ताधारी ने समूह माध्यमों का किस तरह दुरुपयोग किया, यह तो सिर्फ एक उदाहरण है। हमारे यहां प्रेस स्वतंत्र है। मगर यह कहा जा नहीं सकता है कि उसमें जो खबर छपती हैं, सच होती हैं। अधिक संख्या में प्रसारित होनेवाले अखबार के मालिकों का अपना ही स्वार्थ होता है। वे क्या खबरों पर असर नहीं डालते? और अखबार पढ़नेवालों का भी अपना अलग-अलग शौक होता है। यह भी कहनेवाले लोग हैं कि अधिक संख्या में प्रसारित होनेवाले अखबार सभी को ध्यान में रखते हैं, इसलिए वह लोकप्रियता मात्र देखते हैं और संस्कृति के उत्तमांश को नजरअंदाज कर देते हैं।

सिनेमा जो आज बहुत अधिक लोकप्रिय है, वह भी लोगों की पसंद की ओर ही ध्यान देता है। दर्शकों को आकर्षित कर सके, इसके लिए वह उनकी भावनाओं को जगाता है। लोग देखते हैं, इस कारण से सिनेमा में अपराध, हत्या, हिंसा और अत्याचारों को ऐसे

चित्रित किया जाता है कि मनुष्य भुलाए नहीं भूलता। यौवन की दहलीज पर कदम रखनेवालों पर बुरा असर पड़ता है। यह भी कहते हैं कि हमारे घर में सदा हमारे मित्रों के समान रहनेवाले रेडियो, दूरदर्शन हम पर उतना क्रियाशील परिणाम नहीं डालते। कभी जबकि आकाशवाणी में शास्त्रीय संगीत को अधिक महत्व दिया जाता था तब अधिकांश लोग फिल्मी गीतों को सुनने के लिए सिलोन लगाया करते थे। अर्थात लोग जिस कला को चाहते हैं, वह एक जगह आसानी से मिले तो लोग उससे भी बढ़िया चीज को, चाहे उसके लिए जितना भी आग्रह हो, नहीं चाहते हैं। इन समूह माध्यमों में जो तरह-तरह के इश्तिहार आते हैं, लोगों को कई तरह के सपने दिखाते हैं। नई-नई चीजों के उपयोग से जीवन सुखमय बनता है, ऐसा विश्वास दिलाकर लोगों की जिंदगी में परिवर्तन लाते हैं। सुख का पीछा करने वाला आदमी इसका ज्ञान ही खो बैठता है कि क्या सही है और क्या गलत है। दूरदर्शन देखने की लत जब पड़ जाती है तो देखने वाला उसके असर का शिकार हो जाता है। उसमें हिंसा और अपराध से संबंधित दृश्य आने पर यह भी समझ लेने की संभावना होती है कि ऐसे दृश्य जीवन के लिए अनिवार्य हैं। यह भी समझने वाले हैं कि पत्र-पत्रिकाओं में आनेवाली लोकप्रिय कहानी और उपन्यास वास्तविक साहित्य है। इस प्रकार समूह माध्यमों के दुष्परिणामों की लंबी सूची बनाई जा सकती है। एक जमाने में समूह माध्यम ही नहीं थे और हम अब इनके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। इसलिए यह जरूरी है कि इनकी उपयुक्तता देखें और उनके दुष्परिणामों को जितना हो सके, कम करें। आगे के पृष्ठों में चार प्रमुख समूह माध्यमों के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे।

समाचार पत्र

समूह माध्यमों में सबसे पहले समाचार पत्रों का प्रादुर्भाव हुआ। नियमित प्रकाशित होने वाले पत्रों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है। समाचार पत्र और पत्रिकाएं। पहली श्रेणी में वे पत्र आते हैं जो हर रोज और सप्ताह में एक बार प्रकाशित होते हैं। दूसरी श्रेणी में पंद्रह दिन, एक माह, तीन माह, छह माह और साल में एक बार प्रकाशित होने वाले तथा अनियतकालिकों को रखा जा सकता है। यह सही है कि जिस समाचार पत्र के दफ्तर में सैकड़ों लोग काम करते हैं, उसकी प्रसार संख्या लाखों में होती है। दूसरे अर्थों में जिस पत्र का जितना बड़ा तामझाम होगा, उसकी प्रसार संख्या उतनी ही अधिक होगी। मगर जो समाचार पत्र छोटे नगरों या कस्बों से निकलते हैं उनकी उतनी मांग नहीं रहती। ऐसे पत्रों को कभी एक या दो लोग निकालते हैं। कुछ में तो यह भी देखने को मिलता है कि प्रकाशक, संपादक, रिपोर्टर, मुद्रक और वितरक—सब कामों को एक ही व्यक्ति निबटाता है।

आज समाचार पत्रों के बिना एक समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जिस प्रकार साक्षरता बढ़ती है, पढ़नेवालों की संख्या भी सहज ही बढ़ जाती है। आजादी के बाद हमारे देश में समाचार पत्र एक प्रधान उद्योग के रूप में बढ़ा है और हर साल उनकी संख्या भी बढ़ रही है।

पत्र-पत्रिकाओं का महत्व कितना है, यह जानने के लिए देखना

जरूरी है कि वे क्या-क्या करते हैं। अखबार अपने पाठकों को इस बात की खबर देते हैं कि दुनिया में, उनके अपने देश में और उनके आस-पड़ोस में क्या-क्या हो रहा है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों की गतिविधियों का विश्लेषण करते हैं और समझाते हैं कि सही क्या है, गलत क्या है। पाठकों का ज्ञान बढ़ानेवाले और उन्हें मनोरंजन देनेवाले लेखों को प्रकाशित करते हैं। समाचार पत्र सिर्फ इश्तिहार प्रकाशित कर अपना खर्च ही नहीं चलाते बल्कि खरीददार वस्तुओं को बाजार में स्थान दिलाते हैं। लोगों की भलाई के लिए होने वाले सार्वजनिक या व्यक्तिगत कार्यक्रमों का प्रचार करना; हमारे संविधान ने लोगों के लिए जो अधिकार दिए हैं, उनकी रक्षा करना; न्याय, बाजार भाव, खेतीबाड़ी, नए वैज्ञानिक अनुसंधानों के बारे में लोगों का ध्यान आकृष्ट करना; साहित्य, संगीत, कला, संस्कृति, पर्व-त्योहार, प्राकृतिक विशिष्टता आदि के बारे में लेख प्रकाशित करना, समीक्षा करना—इस प्रकार समाचार पत्रों का काम एक या दो नहीं है। जो समाचार पत्र एक समाज की जनता के लिए उपयुक्त काम करता है, वह सहज ही उस समाज का अविभाजित अंग बन जाता है। परिणामस्वरूप समाचार पत्र और पाठकों के बीच एक खास रिश्ता स्थापित हो जाता है।

आज घर-घर में विराजमान दूरदर्शन सारी दुनिया को हमारी आंखों के सामने लाकर खड़ा कर रहा है, यह सच है। मगर समाचार पत्रों का महत्व भी कम नहीं हुआ है। क्योंकि उनका दूसरे समूह माध्यमों की अपेक्षा दीर्घ इतिहास है।

मनुष्य ने जब अपनी बोली के लिए लिपि का आविष्कार किया तो उसका अनुभव भी सामूहिक बनता गया। उसके बाद आविष्कार हुआ छपाई यंत्रों का। इससे एक क्रांति ही हुई, यह कह सकते हैं।

आज कुछ ही घंटों में लाखों की संख्या में जो प्रतियां छपती हैं उस छपाई यंत्र के पीछे एक लंबा इतिहास ही है।

प्रथम छपाई यंत्र को योहानेस गुटेनबर्ग ने निर्मित किया। यह जर्मन देश का निवासी था। 1440 के पहले इसने छपाई यंत्र को निर्मित किया था, तब तक यह जो धारणा थी कि लिपि ज्ञान कुछ ही लोगों की जायदाद है, वह दूर हुई। धार्मिक-ग्रंथों का पठन कुछ ही लोगों ने किया था, इससे उनका धार्मिक ग्रंथों पर स्थापित एकाधिकार खत्म हुआ। छपाई यंत्रों से देश के पुराने साहित्य का व्यापक अध्ययन, लोकप्रियता और समाचार पत्रों का उद्भव संभव हो सका।

दुनिया में सबसे पहला समाचार पत्र जर्मनी में 1615 में प्रकाशित हुआ। फिर सात वर्ष के बाद इंग्लैंड में प्रकाशित हुआ। उस जमाने में जो सार्वजनिक चीजें थीं, वे सभी राजा की जायदाद होती थीं और समाज के लोग अधिक संख्या में अशिक्षित ही थे। शिक्षितों में भी कुछ ही लोग विद्वान थे। उस समाज में बाहरी दुनिया की खबर जानने के लिए आवश्यक व्यवस्था नहीं थी। समाचार पत्र को छपवाकर बांटना आसान काम नहीं था। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं होता है कि इंग्लैंड में जो पहला दैनिक समाचार पत्र (1660) आरंभ हुआ, वह सिर्फ 24 दिन चला।

अठारहवीं सदी में यूरोप में जो औद्योगिक क्रांति हुई, उसने समाज के स्वरूप को ही पूर्णरूप से बदल दिया। इससे यह हुआ कि समाचार पत्र बढ़ने का अनुकूल वातावरण मिला।

अठारहवीं सदी में नए-नए यंत्रों के आविष्कार हुए और जिन कठिन कामों को आदमी को करना पड़ता था, वे आसान हो गए। उन कामों को यंत्र ही शीघ्र करने लगे। इन यंत्रों के कारण घनी

आबादी वाले क्षेत्रों में कारखाने स्थापित हुए। गांव के लोग शहर आए। उनकी आवश्यकतानुसार संचार व्यवस्था भी बढ़ी। यंत्रों से मानव को अधिक विश्रांति मिली, साथ में उसकी आमदमी भी बढ़ी। इससे समाचार पत्रों के पढ़ने वालों की संख्या में भी वृद्धि हुई।

औद्योगिक क्रांति से रोज इस्तेमाल में आने वाली चीजों का उत्पादन बढ़ा। देश के कोने-कोने में चीजों को भेजकर उन्हें वितरण करने के लिए संचार साधनों में सुधार किया गया। चीजों के अधिक उत्पादन से उत्पादन-व्यय भी कम हुआ। और उनके दाम भी कम हुए।

औद्योगिक क्रांति से पहले आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन कम मात्रा में होता था। ज्यादा से ज्यादा वे चीजें आसपड़ोस के गांवों में भेजी जाती थीं। लेकिन समूह साधनों को बड़े पैमाने में तैयार करने के लिए बृहत बाजार की आवश्यकता तो होगी। लोगों को वैसी चीजों के बारे में पता होना है, उन्हें यह जानना भी चाहिए। उन्हें खरीदना चाहिए। तब जाकर समाचार पत्रों ने जो शक्ति और प्रभाव कमाया था, पता चला। उत्पादकों ने अपनी चीजों के इश्तिहार जब समाचार पत्रों में छपवाए तो तुरंत ही उनकी चीजों की मांग बाजार में फैल गई। इश्तिहारों से समाचार पत्रों की आमदनी बढ़ी; उत्पादन-व्यय भी कम हुआ। ज्यादातर लोग सस्ते समाचार पत्र खरीदने लगे। जैसे-जैसे समाचार पत्रों की प्रसार संख्या में वृद्धि हुई तो उसे एक प्रभावशाली समूह माध्यम माना जाने लगा।

उस जमाने में जो सामूहिक शिक्षा आंदोलन चला था, समाचार पत्रों के प्रसार में यह भी एक प्रमुख कारण था। इससे शिक्षितों और विद्वानों की संख्या भी बढ़ी। फलस्वरूप, सरकार के गठन, उसके कार्यनिर्वहण, सरकार की नीतियां, जनमत निर्माण और आम लोगों

को भी प्रमुखता मिलने में सहायक हुआ। बालिग मतदान पद्धति भी तभी से आरंभ हुई।

सामूहिक शिक्षा आंदोलन से समाज में कई तरह के परिवर्तन हुए। इनका समाचार पत्रों के विषय और स्वरूप पर भी असर पड़ा। आरंभ में ऊंचे वर्ग के कुछ ही विद्वानों के लिए जो समाचार पत्र और पत्रिकाएं छपती थीं, उनमें गहन विचार ही होते थे और वे आम लोगों की समझ में नहीं आते थे। तब उनकी प्रसार संख्या भी बहुत कम थी। मगर जब शिक्षा का प्रसार बढ़ने लगा तो पत्र-पत्रिकाएं समाज के विविध लोगों को खुश करने के लिए, मनोरंजक विषयों को, शोरगुल की खबरों को और जो लोगों में शौक जागृत करें, ऐसे मामलों को भी प्रकाशित करने लगीं। गंभीर स्वरूप की पत्र-पत्रिकाएं सिर्फ समाज के कुछ ही लोगों के लिए रह गईं।

लोकप्रियता हासिल करने के उद्देश्य से पत्र-पत्रिकाएं समाज के भिन्न-भिन्न लोगों के लिए कई तरह के विषयों को, मनोरंजक विषयों को, कहानियों को और आकर्षक चित्रों को प्रकाशित करने लगीं। उदाहरण के लिए महिला जगत, खेल-समाचार, सिनेमा आदि पर सुर्खियों में लेख छपने लगे। आधुनिक मशीनें, बढ़िया कागज, रंग-बिरंगी तस्वीरें, विषय-विविधता के कारण पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी महंगा होता गया जिसका नतीजा यह हुआ कि केवल पूंजीपति ही इस क्षेत्र में आने लगे। आज समाचार पत्र का अर्थ है, एक बड़ा कारोबार। अन्य उत्पादक चीजों के समान यह भी मुनाफा देने वाला एक साधन है।

भारत में आधुनिक शिक्षा के लिए विदेशी लोगों ने नींव डाल दी। उसमें भी प्रमुख रूप से ईसाई धर्मप्रचारक आते हैं। 1556 के पहले वैसे कुछ धर्मप्रचारकों ने गोवा में प्रथम छपाई यंत्र की स्थापना

की। उससे तुरंत समाचार पत्र तो आरंभ नहीं हुआ। वैसे देखा जाए तो भारत में, वह भी कलकत्ता में प्रथम समाचार पत्र 1780 में प्रकाशित होने लगा। उसका नाम था 'दि बेंगाल गेजेट'। उसके संपादक थे जेम्स अगस्टस डिकी नामक अंग्रेज महाशय। उसके बाद लगभग 50-60 सालों तक कई समाचार पत्र आए। इनमें ईस्ट इंडिया कंपनी के अंग्रेजी लोगों और अन्य विदेशियों के अंग्रेजी समाचार पत्र; क्राइस्ट मिशनरियों से आरंभ किए गए समाचार पत्र, भारतीय भाषाओं के समाचार पत्र जिनका धर्म प्रसार ही प्रधान लक्ष्य था और ईसाई धर्म के खिलाफ भारतीय लोगों द्वारा शुरू किए गए कुछ समाचार पत्र प्रमुख हैं। पहले वर्ग के समाचार पत्र अंग्रेजी भाषा में ही थे और वे समाज के ऊंचे दर्जे के लोगों को आवश्यक जानकारी देते थे। कुछ तो सरकार के समाचार पत्र जैसे हो गए थे। दूसरे वर्ग के बंगाली पत्र-पत्रिकाओं में जैसे 'समाचार दर्पण', 'दिग्दर्शन' में हिंदू धर्म, दर्शन, ईश्वर आदि के बारे में टीका करने वाले लेख ही थे। उन्हें उचित उत्तर देने के लिए कुछ पत्र-पत्रिकाएं निकलीं और इन पत्र-पत्रिकाओं ने समाज सुधार के लिए काम किया। राजा राममोहन राय ने 'संबंध कौमुदी' जैसी पत्र-पत्रिकाओं द्वारा लोगों के अज्ञान, अंधविश्वास और सती पद्धति को मिटाने की चेष्टा की। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि विदेशी समाज के श्रेष्ठ विचारों को अपनाना चाहिए। उस जमाने में किसी भी पत्र-पत्रिका की प्रसार संख्या 500-600 से अधिक नहीं थी।

लगभग इसी समय गुजराती भाषा में कुछ व्यापार पत्र-पत्रिकाएं आरंभ हुई। 'मुंबई समाचार' (1819) नामक गुजराती समाचार पत्र भारत के अत्यंत प्राचीन पत्र के रूप में प्रसिद्ध है। अंग्रेजी में और बंगाली में उस समय लगभग 35-40 दैनिक और

साप्ताहिक थे।

1861 में 'इंडियन काउंसिल' कानून अमल में आया। इससे यह लाभ हुआ कि भारत में सबसे पहले जनमत को मान्यता मिली। इसके परिणामस्वरूप समाचार पत्र भी अधिक संख्या में बढ़ने लगे। एक अंदाज के अनुसार उस समय मद्रास राज्य में 20, उत्तर भारत में 60, मुंबई में 58 और बंगाल में 29 समाचार पत्र थे। उसके बाद एक-दो दशकों में जो प्रमुख पत्र-पत्रिकाएं आरंभ हुईं वे इस प्रकार हैं : दि टाइम्स ऑफ इंडिया (1861), दि पायोनियर (1865), मद्रास मेल (1868), अमृत बाजार पत्रिका (1868), दि हिंदू (1875)।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म 1885 में हुआ। तब से भारत के समाचार-जगत में एक नया अध्याय आरंभ हुआ। तब तक समाचार पत्रों का उद्देश्य केवल समाज सुधार ही था, अब उन्हें लगा कि राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए लड़ना भी आवश्यक है। जनता में राष्ट्रीयता की भावनाओं को बढ़ाकर, उन्हें स्वतंत्रता संग्राम के लिए प्रेरित करने वाले दादाभाई नारोजी, रानाडे, बालगंगाधर तिलक, सुब्रह्मण्यम अय्यर, गांधीजी जैसे नेता भी पत्रकार ही थे। हमें आजादी के मिलने तक समाचार पत्रों ने देश के राजनैतिक क्षेत्र में जो भूमिकाएं निभाईं, वे अब इतिहास का एक हिस्सा ही बन गई हैं।

समाज सुधार और स्वतंत्रता संग्राम के साथ-साथ हमारे समाचार पत्रों ने शिक्षा के प्रसार और समाज की भलाई पर विशेष ध्यान दिया। फिर समाचार पत्रों का महत्व इतना बढ़ा कि यह बात कहने में आई कि समाचार पत्रों के बिना समाज, समाज ही नहीं है।

बंगाली, गुजराती और मराठी भाषाओं के साथ अगर तुलना करें तो कन्नड़ मे देरी से ही समाचार पत्रों का आरंभ हुआ। 1827 के पहले बल्लारी में प्रथम कन्नड़ छपाई यंत्र की स्थापना हुई, फिर भी

कन्नड़ समाचार पत्र 1843 में आया। उसका नाम था : 'मंगलूर समाचार'। उसके बाद आए 'कन्नड़ वार्तिक', 'सुबुद्धि प्रकाश', 'मैसूर वृत्तांत बोधिनी', विचित्र वर्तमान संग्रह और इन कन्नड़ समाचार पत्रों ने पत्र उद्योग के लिए एक परंपरा का ही निर्माण किया। एम. वेंकटकृष्णय्या जिन्हें प्रेस-जगत का पितामह कहते हैं, उन्होंने 'वृत्तांत पत्रिके', 'साध्वी' आदि समाचार पत्रों को निकाला। इस सदी के प्रेस जगत के कुछ विद्वानों के नाम हैं—डी.वी.जी.ती.ता. शर्मा, सिद्दवनहल्लि कृष्ण शर्मा, मोहरे हणमंतराव, कडेंगोडलू शंकर भट्ट आदि।

आजादी के बाद सिर्फ एक-दो दशक में ही हमारे पत्र-पत्रिकाओं की प्रसार संख्या दुगुनी हुई। जैसे-जैसे दैनिक पत्रों को पढ़ने वालों की संख्या बढ़ने लगी वैसे-वैसे साप्ताहिक और मासिक पत्रिकाओं को भी लोकप्रियता मिली। अंग्रेजी, जो पंडितों की भाषा थी, उन अंग्रेजी समाचार पत्रों के साथ भाषाई समाचार पत्र भी बढ़ने लगे। मगर यह बात सच है कि समाचार पत्र सिर्फ नगरों-शहरों के पाठकों को ही ज्यादा आकर्षित करते थे। हमारे देश में औसतन 80 प्रतिशत लोग गांवों में बसते हैं। इस बात पर ध्यान दें तो लगता है कि समाचार पत्र गांवों पर जो असर डाल रहे हैं, काफी नहीं है। इसके कारण ढूंढ़ना मुश्किल नहीं है। हमारे गांवों में अशिक्षित ज्यादा हैं। इस कारण समाचार पत्रों का महत्व उन्हें मालूम नहीं है; कुछ लोग ऐसे हैं कि उनमें समाचार पत्र खरीदने की शक्ति भी नहीं है। फिर भी यह तसल्ली की बात है कि धीरे-धीरे पत्र-पत्रिकाएं हमारे गांव वालों को मिल रही हैं।

आज भारत में शत प्रतिशत साक्षरता हासिल करने वाला राज्य है केरल। सहज ही केरल की कुछ मलयालम पत्र-पत्रिकाएं अपनी



प्रसार संख्या में सारे देश में प्रथम स्थान पर हैं। पिछले 30 वर्षों में मलयालम, गुजराती, तमिल और मराठी पत्र-पत्रिकाओं में जो प्रगति हुई है, वह हिंदी के साथ-साथ अन्य भाषाओं की पत्रिकाओं में अभी नहीं हुई है, यह हम कह सकते हैं।

जैसा कि पहले भी कहा गया है, विदेशों में हुई औद्योगिक क्रांति ने वहां की पत्र-पत्रिकाओं पर भी गहरा असर डाल दिया। इससे यह हुआ कि लोगों की आवश्यकताओं के अनुसार पत्र-पत्रिकाओं के स्वरूप और विषयों में भी परिवर्तन हुए। यह सच है कि हमारे देश में वैसी क्रांति नहीं हुई। आजादी के बाद ही हमारी शिक्षा, उद्योग-धंधे, व्यापार आदि क्षेत्रों में विशेष प्रगति हुई। इनका प्रभाव पत्र-पत्रिकाओं पर भी दिखाई दे रहा है। पहले जिन्हें समाज की चिंता थी वे एक समाचार पत्र को चला सकते थे। मगर आज ऐसी स्थिति हो गई है कि बड़ी संख्या में जिस पत्र-पत्रिका का प्रसार नहीं है, वह असर नहीं डाल सकती। बिना करोड़ों की पूंजी लगाए, बिना आधुनिक छपाई यंत्रों, बिना लोगों की आवश्यकता के अनुसार रिपोर्ट और लेखों को प्रकाशित किए आज कोई भी पत्र-पत्रिका अर्थपूर्ण नहीं हो सकती। इसलिए आज पत्र-पत्रिकाएं कुछ ही लोगों के हाथ में रह गई हैं। वे भी पत्र-पत्रिकाओं की प्रसार संख्या बढ़ाए बिना इश्तिहारों को आकर्षित नहीं कर सकती। अगर प्रसार संख्या बढ़ानी है तो उन्हें चाहिए कि सभी वर्गों के लोगों की रुचि के अनुसार सामग्री दें। आजकल ज्यादातर पत्र-पत्रिकाएं इन्हीं विषयों को ध्यान में रखकर काम कर ही हैं।

एक समाज में पत्र-पत्रिका को किस प्रकार काम करना है? उसकी आचार संहिता क्या है? उसे कितनी आजादी चाहिए? इन सवालों को भी देखना होगा।

जैसे हमें पता है पत्र-पत्रिका हमारे लिए विदेश की देन है। जाने या अनजाने हमारी सारी पत्र-पत्रिकाएं ब्रिटेन, अमरीकन पत्र-पत्रिकाओं को नमूने के तौर पर रखे हुए हैं। वैसे यह बात भी नहीं है कि वे हमारे देश की स्थिति की उपेक्षा कर रही हैं।

जनता को सच्ची खबरों की जानकारी देने में पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है। कुछ लोगों का कहना है कि सत्य की जांच करने के लिए समाचार पत्रों को स्वतंत्रता देनी चाहिए। इसके लिए सरकार का किसी प्रकार का सेंसरशिप न हो। सेंसरशिप होने से आदमी के मूलभूत अधिकारों में बाधा होती है। जो शासन चलाते हैं, वे भटक जाते हैं, फिर यह ख़तरा पैदा होने की संभावना बढ़ जाती है कि अन्याय ही न्याय के रूप में बदल जाए। अर्थात इन लोगों का कहना है कि लोगों से चुनी गई सरकार समाज की भलाई के लिए काम करने, लोगों में सामाजिक ज्ञान बढ़ाने, उनके मूलभूत अधिकारों की रक्षा करने और सामाजिक कुप्रथाओं को उजागर करने के लिए समाचार पत्रों को आजादी मिलनी ही चाहिए। दूसरे कुछ लोगों का कहना है कि हमारे संविधान में प्रेस को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दी गई है, इसके बाद भी उसे इसका अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहिए। समाचार पत्रों का लक्ष्य समाज की भलाई करना ही हो, ऐसा उन लोगों का कहना है। भारत जैसे विकासशील देशों में सरकार पर सदा निगाह रखने, सामाजिक व्यवस्था का विश्लेषण करने और समीक्षा करने का गुरुतर काम समाचार पत्रों पर है। संक्षेप में देश और समाज की भलाई में प्रेस को काम करना चाहिए।

हमारे संविधान ने समाज के सभी वर्ग के लोगों के लिए समान अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दी है। समाचार पत्रों में सभी वर्गों को स्थान मिलना चाहिए। पत्रकारों का कर्तव्य है कि सभी की भलाई

के लिए जो उचित है, चाहे उसके लिए कितना भी विरोध क्यों न हो, उसे प्रकाशित करना चाहिए। भारत जैसे बड़े देश में, आजादी के पचास वर्ष होने पर भी निरक्षरता, गरीबी, अज्ञानता नहीं मिट पाई है। ऐसी स्थिति में जिन्हें पढ़ना-लिखना आता है, वे सभी समाचार पत्र नहीं पढ़ते। कुछ लोगों का कहना है कि ज्यादातर पत्र-पत्रिकाएं सिर्फ विद्वान लोगों के विचारों को ही प्रतिबिंबित करती हैं। आज पत्र-पत्रिका की एक-एक प्रति के लिए दस-पंद्रह पाठक हैं, यह बात सच है। मगर यह कहा नहीं जा सकता कि समाचार पत्र समाज के निचले वर्ग के लोगों की आवाज बन जाते है। इस दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि हमारी प्रेस को अभी बहुत कुछ करना है।

पाठक भिन्न-भिन्न कारणों से समाचार पत्रों को पढ़ते हैं। कुछ लोग अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय खबरों के लिए पढ़ते हैं, कुछ लोगों की समस्याओं को जानने के लिए पढ़ते हैं। संपादकीय और उस पृष्ठ के अन्य प्रधान लेखों को ही पढ़नेवाले कुछ लोग हैं। कुछ लोगों को तो समाचार पत्र पढ़ना ही एक प्रकार की लत बन गई होती है, ऐसे लोगों के लिए कोई भी खबर हो सकती है। कुछ लोग इश्तिहार, रेडियो, दूरदर्शन के कार्यक्रम, तापमान, बाजार भाव, नवीन वैज्ञानिक अनुसंधान, आर्थिक स्थिति आदि के बारे में जानना चाहते हैं। और कुछ लोग तो सिनेमा, कहानी, धारावाहिक, खेल समाचार आदि को पढ़ना चाहते हैं। कहा जाता है कि अमरीका जैसे देशों में कहानियां, व्यंग्य चित्र और फोटो आदि को पूरी करने वाली पत्र-पत्रिकाएं जीवन की कठोर वास्तविकता को भी भुलाने में कुछ लोगों के लिए मददगार साबित होती हैं।

जहां तक हमारे देश का संबंध है, समाचार पत्र जनता और

सरकार के बीच एक कड़ी के समान काम कर रहे हैं। रेडियो और दूरदर्शन जैसे समूह माध्यम सरकार के कब्जों में है, इसलिए उन्हें उतनी आजादी नहीं है जितनी प्रेस को है। समाचार पत्र न केवल सरकार की कमी एवं दोषों को सामने लाते हैं, बल्कि जनता की समस्याओं को सरकार के सामने भी रखते हैं। सरकार की नीतियों के बारे में सभी वर्गों के लोगों के विचारों को प्रकाशित करते हैं और क्या सही है, क्या गलत है, इसे उजागर करते हैं। सरकार की कमियों को, सार्वजनिक क्षेत्र की लाभ-हानि, आर्थिक प्रगति या अवनति और भ्रष्टाचार आदि का पर्दाफाश करते हैं। समाचार पत्र संपादकीय लेख लिखकर एक समस्या के कई पहलुओं को सामने रखते हैं, पाठकों से आनेवाले पत्रों को प्रकाशित कर आम आदमियों के मन को भी मान्यता देते हैं।

यह सच है कि रेडियो और दूरदर्शन खबरों को प्रसारित करते हैं लेकिन वह उतना विस्तार में नहीं रहता जितना समाचार पत्र में होता है। एक मत यह भी है कि दूरदर्शन खबरों का शीर्षक मात्र प्रसारित करता है, खबरों को जानने के लिए अखबार को ही पढ़ना चाहिए।

एक देश में जनमत तैयार करने में समाचार पत्र जो काम करते हैं, वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए आम चुनाव को ही ले सकते हैं। समाचार पत्र जनता के विचारों को जानने के लिए जो समीक्षाएं करते हैं उससे कुछ हद तक तो जानकारी मिलती है कि कौन सा दल जीतता है और कौन सा दल हारता है। राजनीतिक और सामाजिक विचारों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करने, विवादों के मूल कारणों की चर्चा करने और समाधान के रूप में समाधान पेश करने में समाचार पत्र महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

अन्य माध्यमों की अपेक्षा समाचार पत्र दीर्घ समय तक रहने वाला माध्यम है। रेडियो और दूरदर्शन को तत्काल सुनकर और देखकर भूला जा सकता है लेकिन समाचार पत्रों की बात ऐसी नहीं है। वह कुछ दिनों तक, महीनों तक बचा रहता है। पाठक अपनी पसंद वाले लेख या चित्र को काटकर रख सकते है। वाणिज्य, व्यापार की प्रगति की दृष्टि से भी समाचार पत्र प्रभावशाली माध्यम हैं। वह जो इश्तिहार प्रकाशित करता है, उससे पाठक अपनी मनपसंद की चीजों को खरीदते हैं। इससे यह होता है कि चीजों के उत्पादन के लिए ग्राहक मिलते हैं। अगर दैनिक चीजों की मांग देशभर में होती है तो उन चीजों का इश्तिहार प्रकाशित होना चाहिए। कुछ उद्यमों की सफलता भी समाचार पत्रों की देन होती है। इनमें प्रकाशित होनेवाले बाजार भाव, शेयरों के उतार-चढ़ाव, बाजार का व्यापार आदि देश की आर्थिक उन्नति में पूरक के रूप में काम करते हैं।

पिछले बीस वर्षों में भारत के भाषाई पत्रों में जो बढ़ोत्तरी हुई है, वह आश्चर्यजनक है। पहले यह माना जाता था कि अंग्रेजी भाषा के पत्र ही सारे देश का आईना है। अब ऐसा नहीं है। हमारे यहां जो साक्षर हैं उनमें औसतन 20 प्रतिशत लोग अंग्रेजी पढ़ सकते हैं। बाकी लोगों के लिए अपनी-अपनी मातृभाषा ही प्रधान है। इसलिए भाषाई समाचार पत्र आज अधिक लोकप्रिय हो रहे हैं। अंग्रेजी पत्र राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्व की खबरों को प्रकाशित करते हैं तो अलग-अलग राज्यों में प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र राज्य और स्थानीय खबरों को प्रधानता देते हैं। यह कौतूहल की बात है कि हमारी संसद और विधान सभा के लिए चुनाव द्वारा जो प्रत्याशी जीतकर आते हैं उनमें अधिकांश लोग भाषाई समाचार

पत्रों को पढ़ते हैं। कभी कहा जाता था कि पंडित वह है, जिसे अंग्रेजी आती है और सरकार के साथ व्यवहार करने के लिए अंग्रेजी भाषा की जानकारी होनी चाहिए। लेकिन इसे आज भाषाई समाचार पत्र झुठलाए हुए हैं। इसके साथ-साथ अलग-अलग भाषाओं के समाचार पत्रों की भाषा में भी काफी सुधार हुआ है। भाषाई समाचार पत्रों से उन भाषाओं में नए-नए शब्द, कहावतें और मुहावरें शामिल हुए हैं।

भाषाई समाचार पत्रों से साहित्य की वृद्धि भी हुई है। एक-एक भाषा में हजार या दो हजार की संख्या में प्रकाशित होने वाला उपन्यास अगर एक समाचार पत्र में प्रकाशित हुआ तो वह लाखों पाठकों तक पहुंचता है। हिंदी, तमिल और मराठी जैसे भाषाई अखबारों ने प्रतियोगिताओं द्वारा साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इससे नए नए साहित्यकार भी सामने आए हैं। पुस्तकों की समीक्षा, संगीत, कला, चलचित्र, नाटकों की समीक्षा, कलाकारों के बारे में लेख—ये सभी समाचार पत्रों की सांस्कृतिक क्षेत्र की देन है।

कुछ लोगों का कहना है कि समाचार पत्रों से संस्कृति को हानि पहुंचती है। आम तौर पर जिन पत्रिकाओं की प्रसार संख्या ज्यादा है, उनमें प्रकाशित होने वाली कहानियां, तस्वीरें, कविताएं और धारावाहिक प्रथम श्रेणी के नहीं होते। उपन्यासों की घटनाएं ऐसी होती हैं कि वे किसी भी प्रकार के गाढ़े चिंतन के लिए मौका नहीं देतीं। कुछ तो फिल्म जैसी होती हैं। पाठकों को सोचने का मौका ही नहीं देतीं। उनसे पाठकों का मन बहलाया जाता है, ऐसे लेख पत्र-पत्रिकाओं में काफी स्थान पाते हैं। कुछ समाचार पत्र ऐसे हैं कि वे प्रभावशाली व्यक्तियों को नीचा दिखाने की चेष्टा करते हैं।

इसे पीत पत्रकारिता कहा जाता है। फिर भी कुछ पत्र-पत्रिकाएं तो अपने उदात्त लक्ष्य को नहीं त्यागतीं और समाज के लिए उपयुक्त लेखों को प्रकाशित कर रही हैं। यह सोचने की बात है कि पत्र-पत्रिका की सफलता के लिए उसकी लोकप्रियता ही अकेला मानदंड नहीं होता है।

चलचित्र

दर्शकों पर अत्यंत गहरा प्रभाव डालने वाला माध्यम है चलचित्र। हाल ही में इसे सौ वर्ष पूरे हुए। इतने कम समय में इसने जो लोकप्रियता हासिल की है, इसकी दूसरी मिसाल नहीं मिल सकती। आप कोई फिल्म देखने सिनेमाघर जाते हैं तो वहां का गाढ़ा अंधकार आपको किसी विशेष अनुभव के लिए तैयार करता है। फिर परदे पर अंकित होने वाले चित्र आपको ऐसे दृश्य दिखाते हैं कि उसका वास्तविकता से कोई तालमेल नहीं रहता। सिनेमा की सुंदर युवतियां, सुदृढ़ नायक, खलनायक, शानदार प्रसंग, नाच, गाने—ये सभी आपके लिए एक अद्भुत लोक की ही सृष्टि करते हैं। पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ने के लिए अक्षर और बारहखड़ी आनी चाहिए। मगर सिनेमा के लिए वैसी कोई पूर्व तैयारी नहीं चाहिए।

कहा जाता है कि सौ वर्ष पहले अर्थात 1895 में पेरिस में जब पहला चलचित्र प्रदर्शित हुआ तो दर्शकों को परदे पर अपने जैसे ही चलने-फिरने वाले लोगों को और आसपास की दुनिया को देखकर आश्चर्य हुआ। परदे के लोग अपने जैसे ही बर्ताव करते हैं, यह भी एक कौतूहल की बात थी। इसलिए उन्हें चलचित्र देखना ही एक विशेष अनुभव की बात हो गई।

थामस आल्वा एडिसन जो अमरीका का प्रसिद्ध वैज्ञानिक था, इस माध्यम का पिता है। एडिसन को शायद यह बिलकुल पता नहीं था कि भविष्य में सिनेमा कहा जाने वाला यह माध्यम मनोरंजन

का एक प्रभावशाली साधन होगा। परंतु लूमियर भाइयों को जो चलचित्र को एक व्यवस्थित रूप में प्रदर्शित करने में लगे थे, मालूम था कि यह कुछ समय तक तो लोगों को चुम्बक की तरह खींचेगा। वे अपने साथ चलचित्र को लेकर गए और उन्हें संसार के कई देशों में दिखाया। 1896 में भारत भी आए थे। धीरे-धीरे यह कल्पना भी गायब हो गई कि इसका आकर्षण अल्प समय तक मात्र है।

पहले चलचित्र आज की तरह दो-तीन घंटों के न होते थे। तब उनकी अवधि दो-तीन मिनटों से लेकर दस मिनटों तक थी। प्रदर्शन के समय ऐसी अल्पावधि के चार-पांच चलचित्र होते थे। नृत्य, मल्लयुद्ध, स्टंट (दिखावटी), हास्य आदि उनकी जान थी। उस समय समाज के अमीर लोग इन चलचित्रों को नहीं देखते थे। मुख्य रूप से श्रमिक और निचले वर्ग के लोग देखते थे। पहला कथाचित्र 1903 में तैयार हुआ। उसका नाम था 'दि ग्रेट ट्रेन राबॅरी', इसे बड़ी सफलता मिली। आगे दस-बारह वर्षों में ही नगरों में सिनेमा घर खड़े हो गए। 1915 में अमरीका के निदेशक ग्रीफत ने 'दि बर्थ आफ ए नेशन' नामक चलचित्र को प्रदर्शित किया। इस चलचित्र ने दिखा दिया कि यह माध्यम एक कला भी हो सकती है। इस चलचित्र को समाज के सभी वर्ग के लोगों ने देखा।

धीरे-धीरे चलचित्र को तैयार करने के लिए सुसज्जित स्टूडियो का निर्माण हुआ। प्रशिक्षण प्राप्त टेकनीशियन उपलब्ध हुए। समाज से, नाटक-क्षेत्रों से कई कलाकार आए। नई किस्म की कहानियों पर आधारित चलचित्र तैयार हुए।

उस समय के चलचित्रों में बातचीत नहीं रहती थी। सब मूक चित्र थे। सिनेमा घरों में जब उनका प्रदर्शन होता था, तब चित्र के प्रसंग के भावों को उभारने के लिए संगीतकार कोई एक वाद्य

को बजाते थे। फिर चलचित्रों में संवादों को जोड़ने का काम हुआ। ध्वनिग्रहण-क्षेत्र में प्रगति हुई। इससे बातचीत के साथ पृष्ठभूमि में संगीत को भी सुनाया गया। 1927 में 'दि जाज सिंगर' चलचित्र का निर्माण हुआ। इसमें संवाद और संगीत के कारण एक नई हलचल ही पैदा हो गई। फिर चलचित्रों की भाषा में भी सुधार हुआ। संदर्भ को या मानसिक स्थिति को दिखाने के लिए चित्र में 'दूर चित्र', 'समीप चित्र', 'क्लोजअप' आदि चित्र-विधान प्रयोग में आए। 1935 के आसपास रंगीन चलचित्र भी हुआ। उसी समय टेलीविजन भी लोकप्रिय होने लगा था। चलचित्र को टेलीविजन के साथ स्पर्धा करनी पड़ी; और चलचित्र को प्रभावशाली विधानों को ढूंढ़ना पड़ा। 'बड़ा परदा', '70 एम.एम.', 'सिनेमास्कोप'—इसके कुछ उदाहरण हैं।

चलचित्र तो एक व्यवसाय है। आरंभ से ही वह मनोरंजन देने वाला एक सशक्त माध्यम रहा है। आरंभ में पत्र-पत्रिकाओं का उद्देश्य था, लोगों को शिक्षित करना। मगर चलचित्र का उद्देश्य मनोरंजन करना है। ज्यादा लोगों को एक ही समय में आकर्षित करने वाले इस माध्यम को अपार धन की आवश्यकता है। फिल्म निर्माण के लिए स्टूडियो, भूमिकाएं निभाने के लिए कलाकार, छायाग्रहण, ध्वनिग्रहण, संकलन, संगीत—इन सबके लिए पैसा खर्च होता है। चित्रीकरण के लिए, सैटों के निर्माण के लिए और बाहर शूटिंग के लिए भी ढेर सारे पैसे खर्च होते हैं। चलचित्र का निर्माता लाखों रुपए खर्च करता है और यह कुछ मुनाफे की अपेक्षा भी सहज ही करता है। इसलिए चलचित्र में ऐसी कथावस्तु का होना जरूरी है जिससे अधिकांश लोगों का मन बहलाया जा सके। चलचित्र के निर्माण के बाद उसका वितरण, प्रदर्शन के लिए सिनेमाघर, अधिक से अधिक दर्शकों को आकर्षित करने के लिए इश्तिहार और

प्रचार—ये सब खर्चीले मामले ही हैं।

सिनेमा एक माया जगत की सृष्टि करता है। वह एक ऐसी स्वर्ण-स्वप्न की माया है जो कुछ समय के लिए हमारे चारों ओर की कड़वी सच्चाइयों को भुला देती है। दर्शकों के मन पर सीधा आक्रमण करने वाला यह माध्यम यह भ्रम पैदा करने में कामयाब हो जाता है कि उनके सपने, आशा-आकांक्षाएं साकार होंगी। गरीब का यकायक अमीर बन जाना, सज्जनों का दुष्ट शक्ति के खिलाफ लड़कर जीतना, सिर्फ प्यार से ही खूबसूरत युवती का मन जीतना—ये सभी ऐसी बातें हैं जिन्हें लोग अपनी मन की गहराइयों में चाहते हैं। इनके साथ धीरे-धीरे क्रूरता, हिंसा और अश्लीलता भी चलचित्र में घुस गई। जैसे-जैसे दूरदर्शन लोकप्रियता हासिल करने लगा वैसे वैसे सिनेमा को भी दर्शकों को आकर्षित करने के लिए अपार खर्च करके शानदार दृश्यों को निर्मित करना पड़ा।

भारत में 1896 में ल्यूमियर भाईयों ने (मुंबई में) सबसे पहले चलचित्र का प्रदर्शन किया। धीरे-धीरे लोगों की सिनेमा देखने की लत बढ़ती गई और इंग्लैंड, अमरीका से चलचित्रों को मंगाकर देखने का रिवाज बढ़ गया। ऐसे चलचित्रों को प्रदर्शित करने वाली कंपनियां गांव-गांव जा रही थीं। कुछ शहरों में स्थायी रूप से सिनेमा घरों को बनाया गया। इन सिनेमाघरों में शहर के पढ़े-लिखे लोग और ब्रिटेन के अफसर लोग जाते थे।

भारतीय चलचित्र के इतिहास में 1913 अत्यंत महत्वपूर्ण वर्ष है। तब 'राजा हरिश्चंद्र' जिसे पहला भारतीय चलचित्र कहा जाता है, प्रदर्शित हुआ था। इसका निर्माण दादा साहेब फालकेजी ने किया था। अब हर साल उनके नाम से एक श्रेष्ठ पुरस्कार दिया जाता है। यह पुरस्कार उन्हें दिया जाता है जिन्होंने चलचित्र-क्षेत्र के लिए


HOUSE FULL

अपनी उत्कृष्ट सेवाएं दी हैं। फालकेजी की फिल्म की कथावस्तु पौराणिक है। तब तक भारतीय दर्शकों ने विदेशी चलचित्र को देखा था। यह चित्र अपनी पढ़ी हुई और सुनी हुई पुराण कथा की नकल थी। इसलिए यह चलचित्र उन्हें कमाल का लगा। उन्होंने पहले जिन पौराणिक पात्रों की कल्पना की थी, वे अब रक्तमांस से युक्त आदमियों की ही तरह लगे, जिन्हें हम जिंदगी में देखते हैं। यहां अलग से विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है कि फालकेजी और उनके बाद के निर्माताओं के पौराणिक चलचित्रों ने दर्शकों पर कितना गहरा असर डाला।

उसके बाद मुंबई और मद्रास राज्यों में सैकड़ों मूकचित्र तैयार हुए। धीरे-धीरे पौराणिक चलचित्रों की लोकप्रियता ने सामाजिक चलचित्रों के निर्माण का भी मार्ग प्रशस्त किया। आज भारत के पहले सामाजिक चलचित्र के नाम पर हम जिस चलचित्र का नाम लेते हैं, वह है 'इंग्लैंड रिटर्न' जो 1920 में बना था। फिर भी उस समय भारत के चलचित्रों की अपेक्षा विदेशी चलचित्रों की अधिक मांग थी। उन चलचित्रों की कहानी, प्रस्तुतीकरण, भव्यता आदि के आगे भारतीय चलचित्र फीके दिखाई पड़ते थे। आगे जब चलचित्र में संवाद और संगीत शामिल हुए तो परिस्थिति में थोड़ा सुधार हुआ।

1931 में 'आलम आरा' फिल्म बनी। यह टॉकी चित्र था अर्थात बोलने वाला चलचित्र। कहा जाता है कि इसे देखने के लिए लोगों की भीड़ जमा होती थी; और इसकी टिकटें काला बाजार में बिकती थीं। उसके बाद कुछ ही वर्षों में हिंदी, मराठी, बंगाली, तमिल, तेलुगु आदि भाषाओं में बोलती फिल्में एक के बाद एक तैयार हुईं।

जब भारतीय भाषाओं में चलचित्र तैयार होने लगा तो विदेशी चलचित्रों की मांग कम होने लगी। अपनी भाषा में, अपने ही परिसर

के चित्रों को देखकर लोगों को खुशी हुई। टॉकी चित्रों में गाने भी शामिल होने लगे, जो लोगों के आकर्षण का एक प्रमुख कारण था।

इस सदी के तीसरे दशक में बांबे टॉकीज, प्रभात, न्यू थियेटर्स आदि चलचित्र तैयार करने वाली संस्थाएं कलाकारों को तनख्वाह पर लेती थी। उनके पास शूटिंग के लिए व्यवस्थित स्टूडियो थे। टेक्नीशियंस, संगीतकार, डाक्टर, रसोइया—सभी इन संस्थाओं में तनख्वाह पर ही थे। कुछ संस्थाओं में शूटिंग के लिए आवश्यक जानवरों को पालतू बनाने की व्यवस्था भी थी।

आगे दूसरे महायुद्ध के समय में पैसे वाले कुछ उद्योगपतियों ने सिनेमा के क्षेत्र में पदापर्ण किया। आसानी से अपार पैसा कमाना ही उनका उद्देश्य था। मुनाफे के लिए तो वे कितनी भी रकम लगाने के लिए तैयार थे। आज सस्ते मनोरंजन की फिल्मों को 'मसाला-फिल्मों' के नाम से जाना जाता है। ऐसे उद्योगपति ही इन चित्रों के निर्माता थे। उन्होंने कलाकारों के तनख्वाह में बढ़ोत्तरी की। शूटिंग के लिए शानदार 'सेटों' का निर्माण किया; अखबारों और प्रचार माध्यमों में उनका ऐसा प्रचार किया कि कलाकार घर-घर में पूजे जाने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्हें दस गुना लाभ हो गया।

अमरीका के हालीवुड का लोकप्रिय फिल्में तैयार करने में दूसरा स्थान है। उसी प्रकार अब हमारे यहां बालीवुड ने फिल्म निर्माण के क्षेत्र में इतनी अधिक तरक्की कर ली है कि यहां हिंदी में सबसे अधिक फिल्में बनती हैं। मुंबई में हिंदी में बननेवाली शानदार फिल्में एक निर्धारित कहानी लिए होती है। इन फिल्मों में नायक-नायिकाओं का दबदबा होता है। और नाच, गाने, प्रेम, मारपीट आदि तो आम बात होती है। सूक्ष्म रूप से देखा जाए तो ज्यादातर फिल्मों की कहानियां एक जैसी होती हैं—सब बार-बार दोहराई गई। मिलना-बिछुड़ना,

शक्तिवान नायक, अंत भला--इस तरह की फिल्में सामाजिक समस्याओं का और आदमी के दु:ख-दर्दों का कैसे प्रतिनिधित्व कर सकते हैं? नाच और गाने की बात तो असहज और काल्पनिक लगती हैं। इतना होने पर भी कुछ लोगों ने सामाजिक और अर्थपूर्ण चलचित्रों का निर्माण किया है। बिमलराय, शांताराम, हृषिकेश मुखर्जी आदि निर्देशकों ने वेश्यावृत्ति, विधवा समस्या, दहेज, अस्पृश्यता, कौमी सौहार्दता आदि समस्याओं को परदे पर दिखाया है। दिवंगत सत्यजीत राय जिन्होंने भारत के चलचित्रों की गरिमा से विदेशी लोगों का परिचय कराया है, एक श्रेष्ठ निर्देशक थे। उनकी एक-एक फिल्म संसार की श्रेष्ठ सिनेमा-परंपरा की एक अलग ही देन है।

1970 के आसपास हमारे चलचित्र क्षेत्र में एक नई हवा बहने लगी। कम खर्च में स्टूडियो के बाहर ही शूटिंग की जाने लगी। नई लहर के चलचित्र आने लगे। कहा जा सकता है कि पूना में स्थापित फिल्म इंस्टीट्यूट ऐसे चित्रों की मदद करने लगा। इस संस्था से प्रशिक्षण पाए टेक्नीशियन, निर्देशक, कलाकार 'बालीवुड' के चलन से भिन्न तरीकों से सोचने लगे। लेखक, नाटककार और संगीतकार ऐसे चित्रों में काम करने लगे। ये गंभीर चित्र जिनका उद्देश्य सिर्फ मनोरंजन ही नहीं था, सचमुच कलात्मक थे। उदाहरण के लिए मृणाल सेन, श्याम बेनेगल, आडूर गोपालकृष्णन, गिरीश कार्नाड आदि की फिल्में ले सकते हैं। फिर भी लोकप्रिय मसाला चित्रों के सागर में ऐसे चलचित्र कुछ बूंदों के समान ही हैं।

दक्षिण में 1940 के आसपास मद्रास (अब चेन्नई) दक्षिण भारत की भाषाओं की फिल्मों के निर्माण का केंद्र था। वहां पर कन्नड़,

तेलुगु, तमिल और मलयालम भाषा के चलचित्र तैयार होते थे। तमिल को छोड़कर अन्य तीन भाषाओं के निर्माता अपने-अपने राज्यों में लगभग तीन दशक के बाद बस गए।

भारत में बड़ी संख्या में लोग निरक्षर हैं। यहां पर चलचित्र के समान जो माध्यम प्रभाव डालता है, वह बड़ा है। इसलिए यहां पर मनोरंजक चलचित्रों की अपेक्षा समाचार और वृत चित्र ही ज्यादा उपयुक्त होते हैं। लोगों को देश में हो रही घटनाओं से अवगत कराने, उन्हें विकास के कार्यों की जानकारी देने, उनमें ज्ञान और समझ को पैदा करने के लिए ऐसे चलचित्रों की आवश्यकता है। हमारी सरकार के सूचना और प्रसारण विभाग ने इस उद्देश्य के लिए 1948 में एक चलचित्र विभाग की स्थापना की। यह विभाग देश के सिनेमा घरों, स्कूल-कालेजों, सामुदायिक भवनों, गांवों में प्रदर्शन के लिए समाचारचित्रों और वृत्तचित्रों को तैयार करता है। पहले ये चित्र हिंदी, अंग्रेजी, और तमिल भाषा में होते थे। अब ये सब भारतीय भाषाओं में तैयार होते हैं। वृत्तचित्रों के अलावा गांव के लोगों के लिए परिवार नियोजन, खेती, स्वास्थ्य आदि से संबंधित विशेष चित्रों को भी यह विभाग तैयार करता है। इतना ही नहीं, अब कुछ गैर सरकारी संस्थाएं, औद्योगिक संस्थाएं, और कुछ लोग भी वृत्त चित्रों को बना रहे हैं। यह कानून भी है कि सरकार के चलचित्र विभाग द्वारा निर्मित किए गए समाचार और वृत्त चित्रों को हर सिनेमाघर में फिल्म दिखाने के पहले दिखाया जाए। वृत्तचित्रों से लोगों को संस्कृति की रूपरेखा जानने और देश के विभिन्न भागों का जनजीवन समझने में सहायता मिलती है।

जो चलचित्र तैयार होते हैं, उनके प्रदर्शन के लिए सिनेमा घर चाहिए। एक अनुमान के अनुसार आज हमारे देश में लगभग 8000

सिनेमा घर हैं। इनमें लगभग 3000 सिनेमा घरों के लिए अपनी स्वयं की इमारतें हैं। बाकी टेंट सिनेमाघर या संचार सिनेमा घर हैं, जो उपनगर, छोटे नगर या गांवों में कभी-कभी पांव रखते हैं। ये सब रोज दो-तीन शो दिखाते हैं। कुछ सिनेमा घरों में सुबह का शो भी चलता है। सिनेमा घरों के सामने टिकेट के लिए खड़े लोगों की भीड़ से स्पष्ट हो जाता है कि हमारे यहां जितनी संख्या में फिल्में बन रही हैं, उन्हें देखने वाले दर्शकों के लिए सिनेमा घर पर्याप्त नहीं हैं।

भारत में अब बन रहे चलचित्रों को स्थूल रूप में इस तरह विभाजित किया जा सकता है : पौराणिक, सामाजिक, चमत्कारिक, ऐतिहासिक, साहसिक, जीवन चरित्र, अपराध आदि। कुछ चलचित्र बच्चों के लिए तैयार होते हैं। फिर भी विषय, प्रस्तुतीकरण, अभिनय और आशय की दृष्टि से देखने पर उनमें वैसा अंतर दिखाई नहीं पड़ता। वेश-भूषा नई होने पर भी सार एक ही है। नायक जो बेकार रहता है, उसका एक युवती से प्रेम होना, उनके बीच आनेवाले खलनायक से मारपीट, कहानी चाहे पौराणिक हो या सामाजिक, नायक और नायिकाओं का एक ही प्रकार नाचना, कर्कश संगीत—ये सभी आम बात है। अगर सुंदर युवती अमीर पिता की औलाद है तो उसे प्यार करनेवाला गरीब होता है। इतना ही नहीं, सिनेमा में मद्यपान, जुआ, खून और अत्याचार के दृश्य भी होते हैं। तस्करी आदि की प्रधानता होती है। कुछ चलचित्रों में तो नायक विदेशी स्थानों पर भी गाता है, नाचता है। वास्तविक बात तो यह है कि भारत के दैनिक जीवन के दुखःदर्दों को रेखांकित करनेवाले चलचित्र ही दुर्लभ हो रहे हैं।

अब तो फिल्म के गाने ही उसकी लोकप्रियता के मानंदड हो

गए हैं। पहले शादी, उपनयन जैसे सामाजिक, पारिवारिक कार्यक्रमों में शास्त्रीय संगीत रहता था या भजन गाया जाता था। अब उनकी जगह पर सिनेमा के गाने आ धमके हैं। स्कूल-कालेजों और अन्य सार्वजनिक कार्यक्रमों में भी आज सिनेमा के गाने सुनाई पड़ते हैं।

1950 से पहले रेडियो सिलोन ने भारत के सुननेवालों के लिए ही इश्तिहारों से भरे फिल्मी गीतों के कार्यक्रम को आरंभ किया। उस जमाने में आकाशवाणी फिल्मी गीतों को उतना महत्व नहीं देता था। इसलिए रेडियो सिलोन का कार्यक्रम बहुत लोकप्रिय हुआ। इसे ध्यान में रखकर ही आकाशवाणी ने 1957 में 'विविध भारती' का कार्यक्रम आरंभ किया। हमारे यहां भजन-कीर्तन और लोकगीत जैसे सुगम संगीत को छोड़कर ज्यादातर लोगों को आकर्षित करने वाले दूसरे कोई गीत नहीं हैं। विदेशों में तो जॉज और पॉप नामक लोकप्रिय प्रकार हैं। भारत में इस कमी को भरने के लिए मानों सिनेमा के गाने पैदा हुए। आजकल हमारे देश के लोगों का धार्मिक गीतों और लोकसंगीत में शौक कम हो रहा है। आजकल युवक-युवतियां सीखना चाहती हैं—फिल्मी गानों को। भजन-कीर्तन को भी सिनेमा के गानों की धुन पर गाने का प्रचलन चल निकला है। यह एक प्रकार का दुष्परिणाम है जो हमारे ही संगीत पर हो रहा है।

आंख और कानों को एक ही समय में चलचित्र उत्तेजित करता है और दर्शकों को एक अलग दुनिया में ले जाता है। भ्रम होता है कि परदे पर जो दीख रहा है, सच ही है। इसलिए चलचित्र अखबार और रेडियो से भी प्रभावशाली माध्यम है। अमीर से लेकर गरीब तक सभी के लिए सिनेमा चाहिए। हमारे यहां अब युवक तो हफ्ते में दो-तीन बार सिनेमा देखते हैं। नगरों में कोई भी सिनेमाघर खाली नहीं रहता। रविवार को तो भीड़ भी अधिक होती है।

फिल्मी कलाकार तो बेहद लोकप्रिय हैं। लोग उन्हें देखने के लिए दौड़ पड़ते हैं। सिनेमा के लिए ही पत्रिकाएं भी हैं। इनमें खूबसूरत नायक-नायिकाओं के भिन्न-भिन्न नाज़-नख़रे, उनकी तड़क-भड़क की जीवन-शैली, उनके विवाह में संबंधित अफवाहें और अन्य गासिप भरी रहती हैं। लोग इन्हें शौक से पढ़ना चाहते हैं। इसलिए समाचार पत्र भी अपनी प्रसार संख्या बढ़ाने के लिए फिल्मी समाचारों के लिए ही कुछ पृष्ठ अलग से रखते हैं।

चलचित्र देखनेवालों पर गहरा असर डालता है, यह सच है। मगर कुछ अध्ययनों से पता चला है कि इस माध्यम से समाज पर दुष्परिणाम भी होते हैं। सिनेमा के कुछ हूबहू अपराध दृश्यों से प्रेरित होकर कुछ लोग समाज-विरोधी कार्यों में लग सकते हैं। उसका अवास्तविक जीवन लोगों में ऐसा जादू डालता है कि वे दिन में भी सपने देखने लगते हैं। मनोरंजन मिलता है, इस कारण से लोग सिनेमा के पीछे पागल हो जाते हैं। निचले तबके के लोग अपनी कमाई के अधिकांश पैसे सिनेमा के लिए खर्च कर देते हैं। जो लोग मुश्किलों से घिरे हैं, सिनेमा उनकी हालत से आंखें बचाकर उन्हें आलसी बना सकता है। कुछ लोग सिनेमा में जो कुछ चलता है, उसे सच मान लेते हैं और ऐसे लोगों को वास्तविक जीवन से तालमेल करने में कठिनाई हो सकती है। कुछ लोगों में ऐसी इच्छाएं पैदा हो सकती हैं जिन्हें सिनेमा से पूरा नहीं किया जा सकता। ऐसे लोगों का जीवन निराशादायक हो सकता है। सिनेमा के नायक-नायिकाओं की ठाठबाट की जिंदगी, उनके कपड़े, आभूषण, शानदार बंगला, नौकर-चाकर—ये सभी ऐसे साधन हैं जिनके लिए दर्शकों के मन में इच्छा जागृत हो सकती है। सिनेमा नगरों को स्वर्ग के समान चित्रित करता है, इससे दर्शकों में गांव के बारे में गलत धारणा

बन सकती है। ये सिनेमा के दुष्परिणामों की ओर इंगित करने वाले कुछ उदाहरण हैं।

कुछ लोगों का कहना है कि सिनेमा से लोगों में सुख-सुविधा की वस्तुएं खरीदने की चाह पनपती है। कलाकार जो पोशाक और आभूषण पहनते हैं, दर्शक भी वैसी पोशाकें और आभूषणों को चाहते हैं, इससे ऐसी चीजों की मांग बढ़ती है। कुछ लोग कहते हैं कि धूम्रपान, मद्यपान, हत्या, लूट और अत्याचार जैसी बुरी लतों के लिए सिनेमा ही जिम्मेदार है। और कुछ लोग कहते हैं कि सिनेमा के पात्र, उसमें भी स्त्री पात्र अपने अंग प्रदर्शन से दर्शकों में उत्तेजना भर देते हैं। सेंसर बोर्ड होने के बावजूद भी क्रूरता, हिंसा, अश्लीलता कम नहीं हुए हैं।

चलचित्र से जो नुकसान हुआ है, इसे भूला नहीं जा सकता। हिंदी सिनेमा ने हिंदी के प्रचार प्रसार और सारा भारत एक है, यह भावना जगाने में अच्छी-खासी भूमिका निभाई है। कुछ चलचित्र ऐसे हैं जिन्होंने आजादी की लड़ाई के समय लोगों में राष्ट्रीयता की भावना जगाई। इस माध्यम की सभी संभावनाओं का अगर हम उपयोग कर लें तो लोग अनेक तरीकों से लाभान्वित होंगे, इसमें संदेह नहीं है।

चलचित्र और राजनीति का निकट का संबंध है। फिल्मों में अभिनय करनेवाले कुछ लोग मुख्यमंत्री हुए हैं। तमिलनाडु में द्रविड़ दल और आंध्र प्रदेश में तेलुगु देशम दल ने चलचित्र की सहायता से ही सत्ता संभाली है। डी.एम.के. दल के जनक अन्नादुरै और करुणानिधि पहले से ही फिल्मों के लिए कहानियां और संवाद लिखते थे। एम.जी. रामचंद्रन, एन.टी. रामराव और जयललिता तो एक जमाने में अत्यंत लोकप्रिय नायक और नायिका थे। इनकी

लोकप्रियता राजनीति के क्षेत्र में भी इनकी जीत में सहायक बनी। इस माध्यम का अक्लमंदी से उपयोग किया जाए तो यह कितना लाभदायक सिद्ध हो सकता है, राजनीति के ये व्यक्ति इसके प्रमाण हैं।

रेडियो

रेडियो एक अद्भुत माध्यम है। इससे हम दुनिया को कानों से सुनकर जान सकते हैं। भारत में आज बिना रेडियो के घर की कल्पना भी नहीं की जा सकती। घर-घर के लिए समाचार, संगीत, नाटक, खेल समाचार और इश्तिहारों को रेडियो लाता है, यह रेडियो इस सदी का अत्यंत प्रभावशाली संसाधन है। रेडियो का दूसरा रूप है ट्रांजिस्टर। इसे घर में ही नहीं होटल, दुकानों, कारखानों, खेतों, खेल के मैदानों और स्कूल-कालेजों में देख सकते हैं। ट्रांजिस्टर आमतौर पर दिखाई पड़नेवाला एक उपयुक्त साधन है।

मारकोनी नामक एक वैज्ञानिक ने इस सदी के आरंभ में ढूंढ़ निकाला कि एलेक्ट्रोमैग्नेट तरंगों के द्वारा टेलीग्राफ संकेतों का प्रसार किया जा सकता है। 1906 में इन एलेक्ट्रोमैग्नेटिक तरंगों ने ही आदमी की आवाज को एक ओर से दूसरी ओर पहुंचाया। पहले-पहल किसी को यह पता नहीं था कि यह तरीका इतना प्रभावशाली माध्यम बनेगा। मगर तेरह वर्ष के बाद किसी ने सिर्फ कौतूहलवश इस तरीके का उपयोग कर संगीत का प्रसार किया। इससे यह हुआ कि एक ही समय में हजारों लोगों ने उस संगीत का लुत्फ़ उठाया। तब इस तरीके की संभावनाओं का पता चला। उसी साल अर्थात 1919 में अमरीका में पहले सार्वजनिक रेडियो केंद्र की स्थापना हुई। अगले एक ही दशक में अमरीका में लाखों रेडियो यंत्र उपयोग में आए।

रेडियो की विशेषता को ही देख लें। इसे जो सुनते हैं उनका

पढ़ा-लिखा होना आवश्यक नहीं है। इसलिए हमारे देश के निरक्षर लोग भी सिर्फ सुनने की शक्ति से लोक व्यवहार और मनोरंजक विषयों की जानकारी पा सकते हैं। रेडियो तरंगों के लिए नाले-तराई, पहाड़-गुफाएं, नदी-समुद्र—कोई भी बाधा नहीं डाल सकते। समाज में पंडितों से लेकर अनपढ़ आदमियों तक सभी को अपनी आवाज सुनवाने की शक्ति रेडियो में है। समाचार पत्र को पढ़ने के लिए अक्षर ज्ञान चाहिए; एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिए बैलगाड़ी, वाहन, या रेल चाहिए; सिनेमा देखना है तो घर से निकलकर सिनेमा घर के सामने पंक्ति में खड़े होकर टिकटें खरीदनी होती है। मगर रेडियो सुनने के लिए किसी भी प्रकार की पूर्व तैयारी की आवश्यकता नहीं है। यह कुछ लोगों के लिए मुश्किल के समय में भाई के समान है, अकेले आदमी के लिए आत्मीय मित्र के समान है।

यह सच है कि दूरदर्शन के आने पर रेडियो पहले जैसा लोकप्रिय नहीं रहा। फिर भी यह हमारी जिंदगी का अभिन्न अंग ही बन गया है। और इसमें आश्चर्य भी नहीं है कि यह अपने विशिष्ट प्रभाव से फिर से पहले की अपनी लोकप्रियता हासिल कर ले। सिनेमा देखने के लिए सिनेमा घर में अंधकार का होना जरूरी है; किताब पढ़ने के लिए रोशनी और एकाग्रता की आवश्यकता है; घर के किसी कोने में रहकर दूरदर्शन देखा नहीं जा सकता। मगर रेडियो? घर में अलग-अलग काम करते हुए भी उसके कार्यक्रमों को सुना जा सकता है।

आज बी.बी.सी. कहने पर हमें तुरंत विदेशी रेडियो की याद आती है जो विश्वास करने योग्य समाचार देता है। उसका पूरा नाम है—ब्रिटिश ब्राडकॉस्टिंग कार्पोरेशन। 1954 तक यह केंद्र ब्रिटिश सरकार के अधीन था और अब पूरी तरह आजाद है। यह अपने

खास समाचार प्रसारण से और खास कार्यक्रमों के कारण सारी दुनिया में लोकप्रिय हुआ है। यह संस्था अपने वाणिज्यिक इश्तिहारों के जरिए अपने खर्चों को पूरा करती है।

बी.बी.सी. तीन प्रकार के कार्यक्रमों का प्रसारण करता है, एक मनोरंजक कार्यक्रम और गृहोपयोगी होम सर्विस। दूसरा व्यंग्य-विनोद का लोकप्रिय कार्यक्रम। और तीसरा है—भाषण, चर्चा, संगीत, नाटक, साहित्य के प्रसारण का कार्यक्रम। यह तो 'तीसरे कार्यक्रम' के नाम से ही प्रसिद्ध हुआ है। तीनों प्रकार के कार्यक्रमों का उद्देश्य है—आम आदमी को सीढ़ी-दर-सीढ़ी श्रेष्ठ कार्यक्रम उपलब्ध कराना और उसकी कोशिश यह भी है कि कार्यक्रम हर साल श्रेष्ठ बनता जाए। बी.बी.सी. प्रेस और सिनेमा से अलग एकाधिकार प्राप्त प्रसारण है। इस संस्था के बारे में शिकायतें भी हैं। फिर भी इसके कार्यक्रम ऊंचे स्तर को बनाए रखते हैं।

इसके विपरीत स्थिति अमरीका की है। वहां पर रेडियो आरंभ से ही गैर सरकारी लोगों के हाथ में है। सैकड़ों कंपनियां रेडियो केंद्रों को चलाती हैं। सरकार की अनुमति मिल जाए तो वहां पर कोई भी रेडियो केंद्र की स्थापना कर सकता है। अनुमति देने के बाद सरकार उस केंद्र के कार्यक्रमों में हाथ नहीं डालती। हर रेडियो केंद्र अपने कार्यक्रमों को खुद तैयार कर लेता है जिसे वह ठीक समझता है। कुछ केंद्र मनोरंजन के लिए ही हैं और कुछ औद्योगिक चीजों के इश्तिहारों के बीच लोकप्रिय कार्यक्रमों का प्रसारण करते हैं। कुछ कालेज और विश्वविद्यालय, अन्य सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और सामाजिक संस्थाएं भी अपना अलग रेडियो केंद्र स्थापित किए हुए हैं।

गांव और छोटे नगरों में जो केंद्र हैं, वे अधिकांश लोगों को अच्छे

लगने वाले कार्यक्रमों को तैयार करते हैं। उन्हें फिर से प्रसारण करने के लिए 'नेटवर्क' नाम के जाल भी हैं। 'नेशनल ब्राडकॉस्टिंग कंपनी', 'अमेरिकन ब्राडकॉस्टिंग कंपनी', 'कोलंबिया ब्राडकॉस्टिंग सर्विस'—ये कुछ प्रमुख नेटवर्क रेडियो केंद्र हैं। अमरीका में रेडियो केंद्रों को चलाने के लिए बहुत पैसे चाहिए। इसलिए वहां पर रेडियो इश्तिहारों पर निर्भर हैं। अगर ज्यादा इश्तिहारों को पाना है तो केंद्रों को ऐसे कार्यक्रम प्रसारित करने होंगे जिन्हें बड़ी संख्या में लोग सुन सके और वे लोकप्रिय कार्यक्रम भी हों। वहां ऐसे रेडियो केंद्र भी हैं जो क्रीड़ा, शिक्षण, वाणिज्य, सुगम संगीत मात्र प्रसारित करते हैं।

सोवियत यूनियन (यू.एस.एस.आर.) के पतन से पहले रशिया में रेडियो पूर्ण रूप से सरकार के अधीन था। उसके सारे कार्यक्रम सरकार और कम्युनिस्ट दल की मुखवाणी ही होती थी। सारे सोवियत यूनियन को प्रसारित करने योग्य केंद्रीय रेडियो व्यवस्था वहां थी। साथ में उस देश के अलग-अलग गणराज्यों में भी रेडियो केंद्र थे। इन गणराज्यों का रेडियो प्रसारण स्थानीय सांस्कृतिक और मनोरंजक कार्यक्रमों तक ही सीमित थे। राजनीति, आर्थिक विकास, कानून व्यवस्था आदि मास्को की केंद्रीय व्यवस्था के अधीन ही थे।

सोवियत यूनियन में अन्य समूह माध्यमों के समान रेडियो भी सरकार और दल के प्रचार के लिए ही थे। नूतन सोवियत संस्कृति का प्रचार करने, पूंजीवाद की व्यवस्था का खंडन कर, समाजवादी समाज का गुण गाने के लिए वहां के रेडियो काम करते थे।

भारत में रेडियो हमारी सरकार के सूचना और प्रसारण मंत्रालय की एक शाखा है। एक तरह से यह एकाधिकार माध्यम है। दिल्ली के आकाशवाणी केंद्र के मुखिया हैं डॉयरेक्टर जनरल। अन्य राज्यों

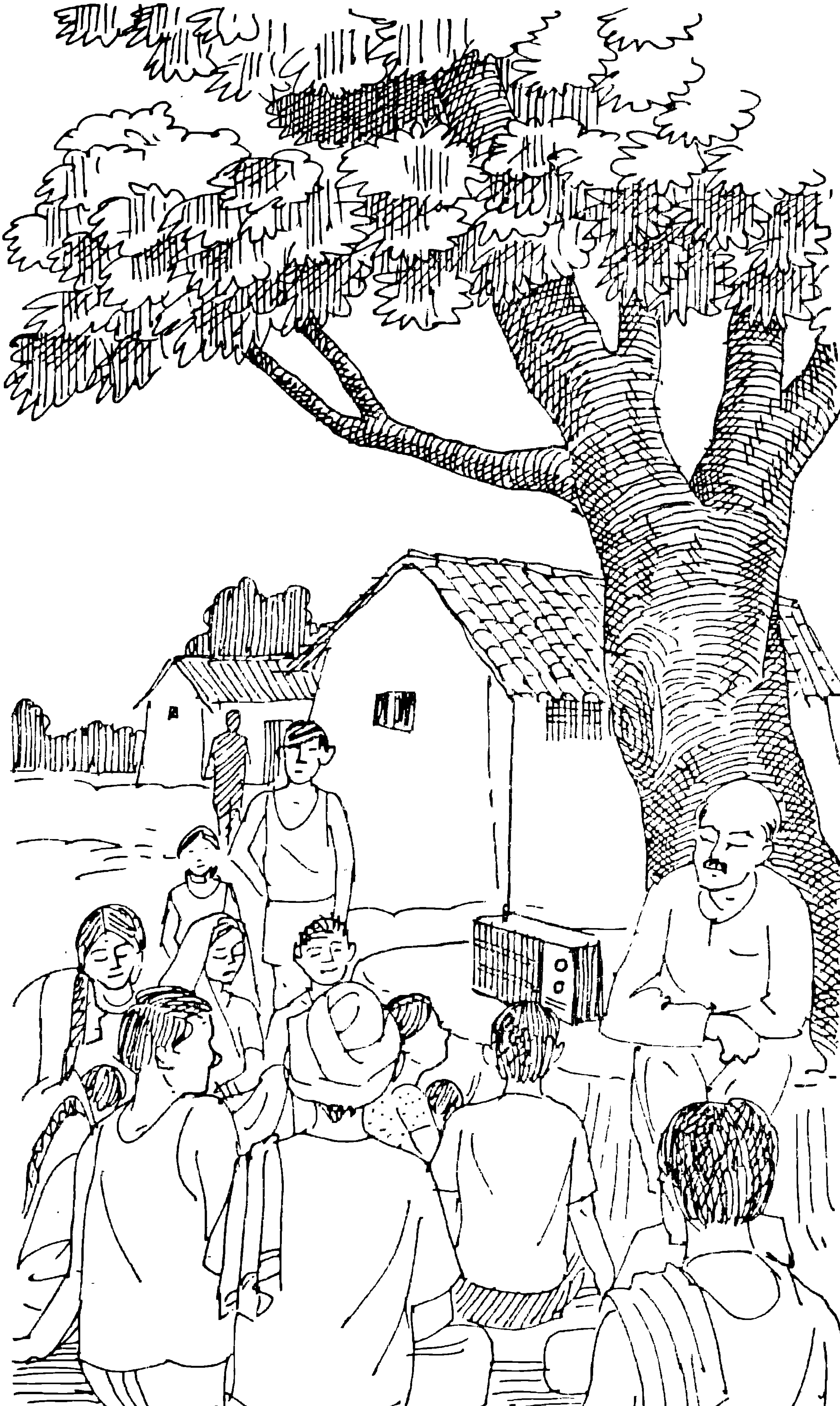
में जो केंद्र हैं, वहां के डॉयरेक्टर ही मुखिया हैं।

सातवीं पंचवर्षीय योजना के आरंभ में भारत में 90 रेडियो ट्रांसमीटर थे। 1990 में एफ.एम. केंद्रों को मिलाकर यह संख्या 180 हो गई। हाल में इसके 205 तक पहुंचने की संभावना है। इसमें 150 मीडियम वेव ट्रांसमीटर और 54 शार्ट वेव ट्रांसमीटर भी शामिल हैं। 1988 में दिल्ली से एक राष्ट्रीय रेडियो चैनल आरंभ हुआ। नागपुर में जो 1000 किलोवाट क्षमता का ट्रांसमीटर है उसके द्वारा इस चैनल के कार्यक्रम प्रसारित होते हैं।

रेडियो का समाचार सेवा विभाग हर रोज 273 समाचार बुलेटिनों का प्रसारण करता है। अकेले दिल्ली केंद्र ही 19 भाषाओं में 78 बुलेटिनों का प्रसारण करता है।

'विविध भारती' नामक प्रसारण वाणिज्य से युक्त मनोरंजक कार्यक्रमों के लिए ही है। चैन्नई और मुंबई में दो उच्च क्षमता के जो शार्ट वेव ट्रांसमीटर हैं, वे इन कार्यक्रमों को देश भर में पहुंचाते हैं। भारत में अब 32 वाणिज्य प्रसारण केंद्र हैं। कुल प्रसारण अवधि का 10 फीसदी इश्तिहारों के प्रसारण के लिए व्यय होता है।

भारत में 1924 में मद्रास में पहली बार रेडियो का प्रसारण हुआ। वहां कुछ लोगों ने 'मद्रास प्रेसिडेंसी रेडियो क्लब' नामक संस्था की स्थापना की और एक-दो वर्ष कार्यक्रमों का प्रसारण किया। तीन वर्ष के बाद 'इंडियन ब्राडकॉस्टिंग कंपनी' नामक संस्था ने मुंबई और कलकत्ता में एक-एक प्रसारण केंद्रों की स्थापना की। फिर तीन ही वर्षों में यह संस्था दिवालिया हो गई, यह सच है। मगर तब तक लोगों को इस माध्यम की लोकप्रियता और प्रभाव का पता चल चुका था। रेडियो सुनने वाले और रेडियो यंत्र को तैयार करने वाले काफी उत्सुक थे। तब भारत सरकार ही रेडियो प्रसारण व्यवस्था



की जिम्मेदारी लेने के लिए आगे आई।

1935 में लयोनल फील्डन नामक अधिकारी सरकार के इस रेडियो प्रसारण शाखा का मुखिया बना। उसने जो योजना तैयार की, उससे शार्ट वेव और मीडियम ट्रांसमीटरों के द्वारा देशभर में रेडियो प्रसारण पहुंचाना संभव हुआ। दिल्ली, मुंबई, कलकत्ता और मद्रास केंद्रों की प्रसारण क्षमता बढ़ाई गई। उसके बाद इन केंद्रों की श्रेणी में तिरूचि और लखनऊ केंद्र भी शामिल हुए।

उसी समय मैसूर, हैदराबाद, बड़ोदा, औरंगाबाद आदि रियासती शहरों में भी कुछ रेडियो केंद्र थे। और ये वहां के राजाओं के अधीनस्थ थे।

1935 से पहले ही मैसूर में प्रसारण केंद्र था। इस केंद्र का आरंभ प्रो. एम.वी गोपालस्वामी ने अपने ही घर में 30 वाट क्षमता के यंत्र से किया था। लगभग छह साल तक यह केंद्र गैर सरकारी रूप में ही चला और बाद में इसे मैसूर संस्थान ने अपने कब्जे में ले लिया। 1950 में यह आल इंडिया रेडियो में विलीन हुआ। आज तमिल मात्र को छोड़कर अन्य सभी भारतीय भाषाओं में रेडियो के लिए 'आकाशवाणी' शब्द का उपयोग किया जाता है। मैसूर ने यह नाम दिया, इसलिए इसका श्रेय मैसूर को जाता है।

भारत में जब पहली पंचवर्षीय योजना का आरंभ हुआ तब तक 25 रेडियो केंद्र थे। उस समय जनसंख्या के औसतन 22 प्रतिशत हिस्से को कार्यक्रम सुनने का मौका मिला था। भविष्य में दूसरी और तीसरी पंचवर्षीय योजनाओं में जनसंख्या के औसतन 80 प्रतिशत लोगों को यह सुविधा पहुंचाई गई। अन्य समूह माध्यमों के समान ही यह माध्यम भी आरंभ में नगर-प्रदेशों के लिए ही लोकप्रिय था, मगर धीरे-धीरे यह दूर-दूर के गांवों में भी फैल गया।

आज आकाशवाणी के लगभग 180 ट्रांसमीटर (प्रसारण यंत्र) देशभर में विभिन्न कार्यक्रमों का प्रसारण कर रहे हैं। समाचार, संगीत और अन्य कार्यक्रम तो पूरे दिन सुनने वालों को आकर्षित कर ही रहे हैं। हमारा देश तो कई भाषाएं बोलने वालों का और विविध समुदाय के लोगों का देश है। यहां पर हर प्रदेश की अपनी-अपनी परंपरा है, संस्कृति है। वेश-भूषा, खान-पान और आर्थिक स्थिति भी एक-सी नहीं है। इसलिए रेडियो माध्यम यहां पर एक निश्चित तरीके से काम नहीं करते हैं जैसा कि विदेशों में है। भारत गांवों का देश है। निरक्षरता अभी पूर्णरूप से नहीं मिटी है। अगर रेडियो को देश के सभी लोगों तक पहुंचना है तो स्थानीय भाषा को स्वीकार करना होगा, दूसरा मार्ग ही नहीं है। एक प्रदेश के लोग अपनी भाषा में ही मनोरंजन को सुनना चाहते हैं जो उनकी संस्कृति के निकट है। उसके बाद सारे देश के और संसार की बात को जानना चाहते हैं; साथ में राष्ट्रीय एकता को प्रतिबिंबित करनेवाले संगीत, नाटक, सामाजिक समस्याओं के बारे में भाषण और चर्चा आदि सुनना चाहते हैं।

भारत के आकाशवाणी केंद्र उपर्युक्त सभी तरह के कार्यक्रमों का प्रसारण कर रहे हैं। उदाहरण के लिए शास्त्रीय संगीत को ही ले सकते हैं। जिस तरह दक्षिण के केंद्र ज्यादातर कर्नाटक संगीत का प्रसारण करते हैं, उसी प्रकार उत्तर के केंद्र हिंदुस्तानी संगीत का प्रसारण करते हैं। मगर दक्षिण के लोग हिंदुस्तानी संगीत को और उत्तर के लोग कर्नाटक संगीत सुन सके, इसके लिए दिल्ली का केंद्र राष्ट्रीय संगीत कार्यक्रमों का प्रसारण करता है। इसके अलावा आकाशवाणी साल में एक बार रेडियो संगीत सम्मेलन को आयोजित करता है, तब दोनों प्रकार के संगीतकारों को समान मौका मिलता है।

आज आकाशवाणी रोज लगभग 800 घंटों के कार्यक्रमों का प्रसारण कर रहा है, यह देखकर किसी को भी आश्चर्य हो सकता है। संगीत, चर्चा, भाषण, संदर्शन, खेल समाचार, समाचार आदि ही नहीं, श्रमिकों, महिलाओं, बच्चों, गांववालों, छात्रों, शिक्षकों और भाषा अल्पसंख्यकों के लिए कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है। 'युववाणी' युवक-युवतियों के प्रतिभा-विकास के लिए ही किया जाता है। 'विविध भारती' केंद्र फिल्मी गीतों और हास्य प्रसंगों को दिनभर प्रसारित करते हैं।

इन सबका खास उद्देश्य है कि आकाशवाणी के कार्यक्रम देश की सभी भाषाओं और सभी वर्ग के लोगों तक पहुंचे।

पचास वर्ष पहले आकाशवाणी दिन में सिर्फ एक बार समाचार का प्रसारण करता था। मगर आजकल दिल्ली केंद्र भारत की सभी भाषाओं में समाचार का प्रसारण करता है। उन्हें राज्यों के केंद्र फिर से प्रसारित करते हैं। हिंदी और अंग्रेजी भाषा में प्रति घंटे में एक बार समाचार का प्रसारण होता है तो राज्यों के केंद्र दिन में चार-पांच बार समाचार का प्रसारण करते हैं। राज्यों के केंद्र जो समाचार प्रसारित करते हैं वे 'स्थानीय समाचार' कहे जाते हैं और ये समाचार उस राज्य की गतिविधियों, उन्नति और सांस्कृतिक कार्यकलापों के बारे में होते हैं।

आकाशवाणी के राष्ट्रीय कार्यक्रमों का उद्देश्य है कि देश के सभी लोगों को अपनी संस्कृति की गरिमा से परिचित कराना; श्रेष्ठ नाटक, संगीत, सदंर्शन और भाषणों को सुनवाना। राष्ट्रीय नाटक कार्यक्रमों में, महीने में एक बार, भारतीय भाषा से लिए गए नाटक को अन्य भाषाओं में भी अनूदित कर प्रसारित किया जाता है। भारत की विकास योजनाओं या किसी पेचीदा समस्या के बारे में विद्वानों से

विचार गोष्ठियों का आयोजन किया जाता है और वे राष्ट्रीय कार्यक्रमों में शामिल होते हैं।

रेडियो से ऐसे कार्यक्रम भी संभव हैं जो शिक्षा के लिए पूरक हो। आकाशवाणी छात्रों के लिए ही विशेष शाला प्रसारण कर रहा है। छात्रों, उसमें भी विशेष रूप से माध्यमिक और प्रौढ़शाला के छात्र इस प्रसारण से विज्ञान, समाजशास्त्र, साहित्य, संगीत आदि के बारे में अधिक ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, इससे उनके पाठ्यक्रम को सीखने में ज्यादा मदद मिलती है। जो हिंदी, अंग्रेजी और संस्कृत भाषा सीखना चाहते हैं, और जो शास्त्रीय संगीत सीखना चाहते हैं, उनके लिए विशेष पाठ का प्रसारण किया जाता है। गांव के किसान और महिलाओं के लिए ऐसे कार्यक्रम भी हैं जो बुनियादी शिक्षा दे सकें। इनमें बचत, नवीन खेतीबाड़ी, पौष्टिक खाद्य तैयार करना, परिवार नियोजन, प्रथम चिकित्सा, बीमारियों के बारे में पूर्वचेतावनी आदि के बारे में जानकारी दी जाती है।

हमारे गांवों में जो किसान खेतीबाड़ी पर ही निर्भर हैं, उनके लिए आकाशवाणी विशेष कार्यक्रमों का प्रसारण करता है, जो बहुत ही लोकप्रिय हुए हैं। हमारी कुल आबादी के औसतन 75 फीसदी लोग गांवों में ही बसते हैं। इन गांवों के लिए योग्य यातायात की व्यवस्था भी ठीक से नहीं होती। यह भी कहा नहीं जा सकता कि सारे गांव वाले पढ़े-लिखे हैं। हालात रेडियो माध्यम के लिए अनुकूल हैं। इसलिए तो हमारी आकाशवाणी में ग्रामीण कार्यक्रमों की प्रधानता है। पहले दिल्ली आकाशवाणी ने 1936 में पंजाब के गांवों के लिए ऐसे कार्यक्रमों के प्रसारण किए। आजकल सभी केंद्र तीन-चार घंटे विविध भाषाओं में इन कार्यक्रमों का प्रसारण कर रहे हैं। गांव के लोगों को बुनियादी शिक्षा, मनोरंजन के साथ खेतीबाड़ी के लिए

आवश्यक कृषि-पद्धतियां, दुग्ध-उद्योग, मुर्गी, सुअर, मधुमक्खियों का पालन, कुटीर-उद्योग, गांव के उद्योग, स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, बाजार भाव, तापमान की खबर, मत्स्यपालन आदि के बारे में संपूर्ण जानकारी भी ये कार्यक्रम देते हैं। ग्रामीण संस्कृति को प्रतिबिंबित करने वाले लोकगीतों का भी प्रसारण करता है और इसके द्वारा इस कला को प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

एक गांव में सभी के घरों में रेडियो नहीं होता। हमारे गांवों में ऐसे गरीब भी हैं, जिनसे रेडियो भी खरीदा नहीं जा सकता। आकाशवाणी के कार्यक्रम चाहे जितना भी उपयुक्त क्यों न हों, मगर जब उन्हें सुननेवाले ही न रहे तो क्या लाभ? इस समस्या को हमारी सरकार ने देखा और एक योजना बनाई। इस अनुदान-योजना से गांववाले जो प्रयोजन पाना चाहते हैं, खुद भी कुछ पैसे लगाकर रेडियो खरीदने लगे। आज एक लाख से ज्यादा ऐसे रेडियो हैं, इससे कई गांव के लोग एक साथ बैठकर रेडियो सुन रहे हैं। ऐसे श्रोताओं के लिए ही आकाशवाणी 'ग्रामांतर रेडियो गोष्ठी' नाम से विशेष कार्यक्रमों का प्रसारण करता है। हमारे यहां हरित क्रांति इसलिए सफल हुई है कि किसान अत्याधुनिक कृषि-पद्धतियों को अपना रहे हैं। किसानों को आवश्यक जानकारी दी जा सके, इसके लिए आकाशवाणी ने अपने केंद्रों में कृषि शाखा का आरंभ किया। इस शाखा में कृषि-विद्वान ही प्रमुख हैं। उनकी देखरेख में संबंधित राज्यों के केंद्र ही कार्यक्रमों को तैयार करते हैं। कृषि विभाग के विद्वान गांवों में जाकर किसानों से मुलाकात करते हैं। फिर कृषि से संबंधित समस्याओं के लिए उपाय भी सुझाते हैं। कृषि कार्यक्रमों पर जोर देनेवाली यह शाखा बोआई के समय के बीजोपचार, फसल के कीट और बीमारियों से होनेवाले नुकसान को रोकने की विधि, रासायनिक

खाद, उन्नत बीज आदि के बारे में कार्यक्रमों को तैयार करते हैं। आकाशवाणी जिन लोकप्रिय कार्यक्रमों का प्रसारण करती है उन्हें ग्राम सेवक सुनते हैं और जो रेडियो सुन नहीं सकते, ऐसे किसानों को समझाने की व्यवस्था भी है। 1955 में हमारी सरकार के समाचार विभाग ने 'यूनेस्को' संस्था के सहयोग से एक अध्ययन किया, तब मालूम हुआ कि ये कार्यक्रम बहुत ही सफल हुए हैं।

जैसे पहले ही कहा गया है कि भारत कई भाषाओं और संस्कृति का देश है। यहां के लोगों का सामाजिक, आर्थिक स्तर भी एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में भिन्न हो सकता है। इसे भी ध्यान में रखना होता है। अन्य माध्यमों के समान आकाशवाणी की भी अपनी सीमाएं हैं। फिर भी यह अत्यंत प्रभावशाली माध्यम है।

आकाशवाणी के बारे में शिकायतें भी हैं। कुछ लोगों का कहना है कि यह सरकार के सीधे नियंत्रण में है। सरकार अपने प्रचार और संसाधनों के बखान के लिए इसका इस्तेमाल करती है। विरोधी दलों की आलोचना की जाती है। अपनी असफलताओं को छिपाकर रखती है; यह माध्यम सरकार के अधीन है, इसलिए इस माध्यम में आवश्यक दूरदर्शिता, नएपन का अनुसरण करने की कुशलता और सृजनशीलता नहीं है; साथ में आकाशवाणी कुछ उपभाषाओं को जो हर राज्यों में है, उतना महत्व नहीं दे रहा है; वह जिस भाषा का प्रयोग कर रहा है, वह उतना सरल नहीं है; शास्त्रीय संगीत को अधिक प्रमुखता दी गई है; पहले दर्जे के कलाकारों को प्राथमिकता नहीं मिल रही है; जीवन की ज्वलंत समस्याओं के बारे में व्यापक चर्चा हो—ऐसा कार्यक्रम नहीं देते।

भारत जैसे विशाल देश में और जहां पर विविध वर्गों के लोग हैं, यहां पर कोई भी माध्यम ऐसा काम नहीं कर सकता जिससे

सभी संतुष्ट हों। फिर भी आकाशवाणी ने आज तक अपने कार्यक्रमों से जो असर डाला है, इससे समाज में कई परिवर्तन संभव हुए हैं। अशिक्षित भी अब रेडियो सुनकर अपना ज्ञान बढ़ा रहे हैं। अंत में कहा जा सकता है कि दूरदर्शन की लोकप्रियता दिन-ब-दिन बढ़ रही है। इसलिए रेडियो को अब दूसरे तरीके से सोचकर अपने प्रभाव को और ज्यादा बढ़ाना होगा।

दूरदर्शन

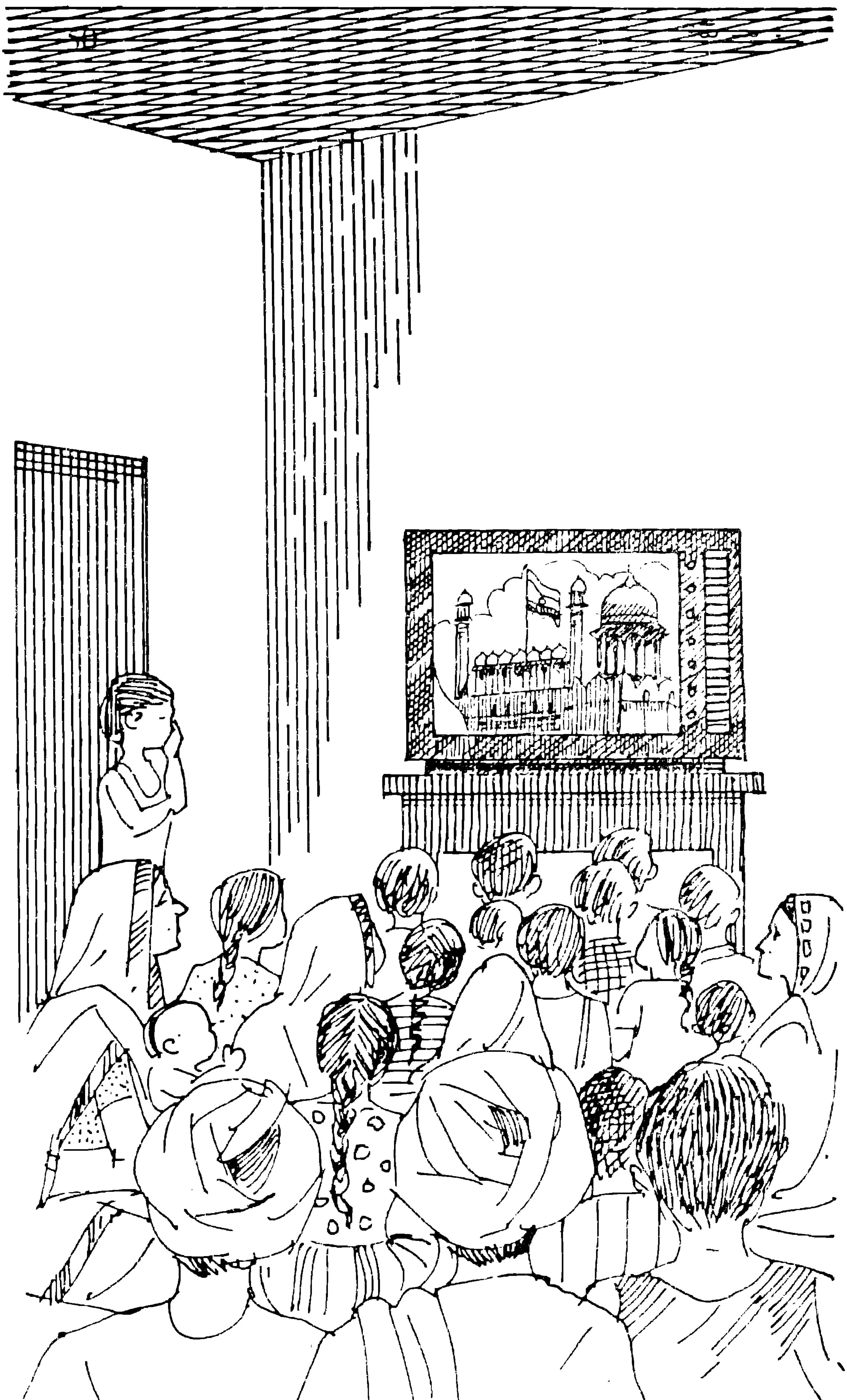
जिस प्रकार रेडियो संसार को हमारे पास ही लाता है उसी प्रकार का दूसरा माध्यम है दूरदर्शन। रेडियो हमारे कान की सुनने की क्षमता पर निर्भर है और दूरदर्शन कान के साथ हमारी आंखों की शक्ति पर भी निर्भर है। पिछले पांच-छह दशकों में दूरदर्शन ने विदेशों में अत्यंत प्रभावशाली माध्यम के रूप में प्रसिद्धि पाई है। और आज वह हमारे देश में भी लोकप्रिय हुआ है। आज दूरदर्शन देखना संसार भर में एक लत के समान हो गया है; यह ऐसी लत है जिसे त्यागना संभव नहीं है। अमरीका के लेखक जान मेसन ब्राउन ने इस माध्यम के बारे में जो बात कही है, वह अर्थपूर्ण है। उनकी दृष्टि में दूरदर्शन एक च्यूयिंग गॅम के समान है; मुंह में डालकर चबानेवाला च्यूयिंग गम नहीं, आंखों का च्यूयिंग गॅम।

दूरदर्शन ने सही मायने में घरों में प्रवेश किया, दूसरे महायुद्ध के बाद। फिर भी वह 1936 के पहले ही ब्रिटेन में सार्वजनिक वीक्षण का केंद्र था। कहा जाता है कि लड़ाई के दौरान उस देश में 25 हजार टी.वी. सेट थे। 1946 में, उसके एक वर्ष के पहले अमरीका में सार्वजनिक रूप से दूरदर्शन के कार्यक्रम आरंभ हुए। 1950 के दशक में ऐसे घरों की संख्या बढ़ने लगी जहां टी.वी. थे। कहा जाता है कि अगले दस-बारह सालों में ही इंग्लैंड में एक करोड़ टी.वी. थे। अमरीका में तब औसतन 92 प्रतिशत लोग टी.वी. के मालिक हो गए थे। अब तो यह कहा जा सकता है कि वहां ऐसा कोई

भी घर नहीं है, जहां टी.वी. न हो।

हमारे देश में सबसे पहला दूरदर्शन केंद्र 1959 में स्थापित हुआ। यह केवल प्रयोगात्मक रूप में आरंभ हुआ था, दिल्ली में यह केंद्र सप्ताह में मात्र दो बार कार्यक्रमों का प्रसारण करता था। वह भी सिर्फ पच्चीस मिनटों का कार्यक्रम था। अगले दो वर्षों में ही यूनेस्को नामक विश्व संस्था के शैक्षणिक विभाग ने सहायता दी और यह केंद्र दिल्ली के आसपास के गांवों में अच्छे कार्यक्रमों का प्रसारण करने लगा। बाद में सेकेंडरी और हायर सेकेंडरी स्कूलों में भी छात्रों के लिए उपयुक्त कार्यक्रमों का प्रसारण किया गया। इससे यह हुआ कि दूरदर्शन का महत्व समझ में आया। 1967 में दिल्ली के केंद्र ने ही किसानों के लिए 'कृषि दर्शन' नामक कार्यक्रम शुरू किया।

दिल्ली का यह पहला केंद्र आशा से बढ़कर सफल हुआ। फिर भी सारे भारत में दूरदर्शन के केंद्रों की स्थापना करने में कुछ बाधाएं थीं। सबसे पहले, दूरदर्शन की तरंगे सीमित वलय में चलती हैं। इसलिए एक ही केंद्र भारत जैसे बड़े देश में सभी जगह कार्यक्रमों का प्रसारण नहीं कर सकता है। इसके लिए सैकड़ों केंद्रों की स्थापना जरूरी थी। उपग्रह के द्वारा देश के हर भाग में कार्यक्रमों का प्रसारण करने की व्यवस्था करनी होगी। इसके लिए बहुत पैसे खर्च करने होंगे। दूसरी बात यह है कि दूरदर्शन के कार्यक्रमों की तैयारी का काम महंगा है। इसके लिए छाया चित्रकार, रोशनी के संयोजक, इलेक्ट्रानिक इंजीनियर, ध्वनि-संयोजक, संकलन, प्रसाधन-विशेषज्ञ, निर्देशक, स्टूडियो—सब चाहिए। बाहर की शूटिंग के लिए और कार्यक्रम तैयार करनेवालों के लिए पैसे देने होंगे। अर्थात एक रेडियो घर के लिए जितना खर्च आता है, उससे दस गुना अधिक पैसे चाहिए। रेडियो में जो काम दो लोग कर सकते हैं, वही काम दूरदर्शन



के लिए बीस लोगों से भी आसानी से नहीं हो सकता है। आज, आधा घंटा के एक दूरदर्शन के कार्यक्रम के लिए लाखों रुपए खर्च होते हैं।

जब दिल्ली में दूरदर्शन केंद्र की स्थापना हुई तो हमारे देश के सभी गांवों में रेडियो ही नहीं थे। दूरदर्शन नगरवासियों को, उसमें भी मुख्य रूप से पैसेवालों को मनोरंजन देने का साधन है, यह कल्पना भी उस समय थी। शायद इन सभी कारणों से भारत की पहली तीन पंचवर्षीय योजनाओं में दूरदर्शन की स्थापना के लिए मौका न मिल सका।

आगे प्रसिद्ध वैज्ञानिक स्वर्गीय होमी भाभा के नेतृत्व में हमारे देश ने इलेक्ट्रानिक क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की।

उसी समय हमारे पड़ोसी देशों के प्रसारण सीमा के लोगों को आकर्षित कर रहे थे। 1966 में हमारी सरकार द्वारा नियुक्त चंदा समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि भारत को शीघ्र ही अपनी दूरदर्शन प्रसारण व्यवस्था को बढ़ाना होगा और सारे नगरों में जहां की आबादी एक लाख से ऊपर है, दूरदर्शन के कार्यक्रम पहुंचाने चाहिए। इसके फलस्वरूप भारत सरकार ने एक योजना तैयार की। इस योजना के तहत पहले दिल्ली केंद्र की प्रसारण क्षमता बढ़ाई गई। उसके बाद यह हुआ कि उस केंद्र के कार्यक्रमों को उत्तर प्रदेश और हरियाणा के कई गांव देखने लगे। फिर 1972 में मुंबई में और अगले वर्ष श्रीनगर, अमृतसर में, 1975 में मद्रास, कलकत्ता और लखनऊ में भी दूरदर्शन के केंद्र आरंभ हुए। आज हमारे देश के सभी प्रमुख नगरों में सरकारी स्वामित्व के दूरदर्शन केंद्रों के अलावा कई गैर सरकारी टी.वी. चैनल और केबल टी.वी. भी कार्य कर रहे हैं।

अब हमारे टी.वी. केंद्र सुबह छह बजे से आधी रात तक कार्यक्रमों

का प्रसारण करते हैं। इनमें मनोरंजन से भरपूर पारिवारिक, पौराणिक धारावाहिक, मुलाकातें, समाचार, संगीत, नाटक, नृत्य सिनेमा, फिल्मी गीत, बच्चों, किसानों, युवाओं और छात्रों के लिए कार्यक्रम, खेल-समाचार आदि प्रमुख हैं। गणतंत्र दिवस समारोह, क्रिकेट, बजट अधिवेशन, अंतर्राष्ट्रीय महत्व के समारोह आदि का सीधा प्रसारण होता है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.) कालेज छात्रों के लिए ही कार्यक्रमों को तैयार करता है। 'डिस्कवरी चैनल' वैज्ञानिक चमत्कारों को दिखाता है।

हमारे देश में 1 अगस्त 1975 को सॉईट का (सेटेलाईट इंसट्रक्शनल टेलीविजन एक्सपेरिमेंट) जो उद्घाटन हुआ वह एक प्रमुख सोपान है। इसका उद्देश्य था कि एक उपग्रह के द्वारा 2400 गांवों के टी.वी. कार्यक्रमों का प्रसारण करना। इसके लिए आवश्यक आधुनिक उपग्रह को अमरीका ने एक साल के लिए दिया। राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार, कर्नाटक, आंध्र और उड़ीसा राज्यों के गांवों के लिए इस उपग्रह की सहायता से टी.वी. कार्यक्रमों को पहुंचाया गया। हर गांव में खास एंटीनायुक्त टी.वी. सेट लगाकर इन कार्यक्रमों का प्रसारण किया गया।

1990 में हमारी संसद में 'प्रसार भारती' (ब्राडकॉस्टिंग कार्पोरेशन आफ इंडिया) मसविदा पेश किया गया। इससे यह हुआ कि दूरदर्शन और आकाशवाणी को स्वायत्तता संभव लगने लगी है। 1989 तक दूरदर्शन नेटवर्क ने 480 ट्रांसमीटरों को (प्रसारण यंत्र) पाया था। सातवीं पंचवर्षीय योजना में यह संख्या 545 तक बढ़ी। अब हमारी आबादी में औसतन 82 फीसदी लोगों को टी.वी. कार्यक्रम उपलब्ध हैं। कार्यक्रमों को तैयार करनेवाले केंद्रों की संख्या 48 हैं। दिल्ली, मुंबई, चेन्नई और कलकत्ता केंद्रों में दूसरा चैनल है। आठवीं

पंचवर्षीय योजना में यह सुविधा और सोलह राजधानियों तक बढ़ा दी जाएगी।

कार्यक्रमों का प्रसारण करने के लिए केंद्रों को टी.वी. टॉवर चाहिए। हमारे देश का सबसे ऊंचा टी.वी. टॉवर नई दिल्ली के पीतमपुरा में है। यह टॉवर कुतुबमीनार से तीन गुना ऊंचा है, और उसने 1988 में अपना काम आरंभ किया। अगले साल फरवरी में एशिया ग्राम में एक केंद्रीय सिद्धता केंद्र (सी.पी.सी.) प्रारंभ हुआ।

दूरदर्शन अपने सीधे प्रसारण के लिए और मॉइक्रोवेव व्यवस्था के उपयोग से अपने राष्ट्रीय जाल के कार्यक्रमों के लिए 'इन्सेट' नामक बहुउद्देश्यीय उपग्रह का उपयोग कर रहा है। अगस्त 1984 में 'इन्सेट 1-बी' उपग्रह के द्वारा उच्च शिक्षा से संबंधित कार्यक्रमों का आरंभ किया गया। उसी समय देशभर में राष्ट्रीय कार्यक्रम का एक बारगी प्रसारण भी आरंभ हुआ।

दूरदर्शन ने 1986 में अपनी वाणिज्य सेवा का आरंभ किया। अब यह सेवा ज्यादातर केंद्रों में व्याप्त है। इससे इश्तिहारों के द्वारा ज्यादा पैसा मिलता है। 1990 में इश्तिहारों से दूरदर्शन को 210.13 करोड़ रुपए मिले। अब संभव है कि यह राशि दुगनी हो गई हो।

एक दृष्टि से आज दूरदर्शन सर्वव्यापी है। विदेशों की तरह हमारे देश में भी आज ज्यादातर परिवारों तक टी.वी. कार्यक्रम पहुंच रहे हैं। समूह माध्यमों में दूरदर्शन त्वरित असर करनेवाला माध्यम कहा जाता है। और यह खेतीबाड़ी, परिवार नियोजन, स्वास्थ्य, वाणिज्यवृद्धि आदि पर जोर देता है, ऐसा कहा जाता है। जिन्हें पढ़ना-लिखना नहीं आता उसे मुख्य धारा में शामिल करने की शक्ति दूरदर्शन में है। इसमें निरक्षरता को दूर करने की शक्ति भी है, ऐसा भी माना

जाता है। इस तरह की बातें करने वाले इस माध्यम के तरफ़दार हैं। मगर पिछले 30-40 वर्षों में, विदेशों में टी.वी. से जो दुष्परिणाम हुए हैं, उनका अध्ययन जिन्होंने किया है, उनका कहना कुछ दूसरा ही है।

कुछ लोगों का कहना है कि लोग दूरदर्शन देखने में ही ज्यादा वक्त बिताते हैं। नौकर लोग और गृहिणियां मनोरंजन के लिए दूरदर्शन के आगे बैठकर समय बर्बाद करती हैं; स्कूल-कालेजों के छात्र खेल-कूद और अध्ययन पर ध्यान देने की अपेक्षा दूरदर्शन देखने में समय बर्बाद कर देते हैं। दूरदर्शन जो दिनोंदिन और ज्यादा लोगों को आकर्षित कर रहा है, वह हिंसा, क्रूरता, मारपीट के कार्यक्रमों का ही ज्यादा प्रसारण करता है, इससे समाज में बुराइयां बढ़ रही हैं। धारावाहिक कहानियां तो पलायनवादी कथा सूत्रों से बुनी रहती हैं। जो दूरदर्शन में अधिक लगाव दिखाते हैं, वे आलसी बन जाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि इस माध्यम में लोगों का पारिवारिक जीवन भी बदलने की शक्ति है। इस माध्यम का समाचार पत्रों, रेडियो और चलचित्रों पर भी असर हुआ है।

आज तक जो समाचार पत्र सिर्फ मनोरंजन ही करते थे, वे आजकल दूरदर्शन के कारण पिछड़ रहे हैं। रेडियो ने अपनी पहले की लोकप्रियता खो दी है। टी.वी. भी फिल्मी गीतों को दिखा रहा है, इससे सिनेमा दर्शकों से खाली हो गए हैं। इसलिए समाचार पत्र नई-नई संभावनाओं पर सोच रहे हैं। टी.वी. आम मनोरंजन करता है, इसलिए रेडियो समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों तक पहुंचने का काम कर रहा है। मगर सिनेमा उद्योग पर बहुत बुरा असर हुआ है। फिर भी कहा जा सकता है कि उसने अपनी एकनिष्ठता को बचाए रखा है।

दूरदर्शन घर के बरामदे में या कमरे में परिवार के कुछ लोगों

को अपने कार्यक्रम का प्रसारण करता है। उन्हें देखने के लिए बड़ी एकाग्रता की आवश्यकता भी नहीं है। दर्शक कभी-कभी दूसरे काम में लग सकते हैं या रसोई घर या और कहीं कुछ देर के लिए जाकर आ सकते हैं, इसमें कोई बाधा नहीं होती। और टी.वी. देखने के लिए अंधेरे की तो आवश्यकता ही नहीं है। मगर चलचित्र अंधेरे में चलता है। अगर अंधेरा नहीं है तो वह अपने मायाजाल को प्रभावकारी रूप में ढ़ाल नहीं सकता। दर्शक को भी अपने अस्तित्व को भूलकर परदे के दृश्य में लीन होना चाहिए। चलचित्र के इस विशेष गुण को टी.वी. ले नहीं सकता।

यह सच है कि दूरर्शन से परिवार के सदस्यों में अधिकांश लोग घर पर ही ज्यादा समय दे रहे हैं। सब साथ रहते हैं, मगर चुप रहते हैं। वे जो भी बात करते हैं, वे धारावाहिक से या टी.वी. कार्यक्रम के बारे में होती है। घर के मामलों के बारे में बातें नहीं होतीं। इससे घर में पहले जो आत्मीयता का वातावरण था, अब धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है। माता-पिता अपने बच्चों पर ध्यान नहीं दे रहे हैं; बच्चों को अपने माता-पिता के मन की बात का पता नहीं चलता। घर में बातचीत ही कम हो गई है।

दूरदर्शन के आने से लोगों का अपने सगे-संबंधियों के घर में आना-जाना कम हो गया है; खेल, सार्वजनिक सभा आदि में भाग लेना भी कम हो गया है। लोगों का आपस में मिलना-जुलना कम हो रहा है। कुछ लोग कहते हैं कि टी.वी. इश्तिहारों से लोगों के खान-पान में भी परिवर्तन हो रहा है। ऐसे उदाहरण भी हैं कि लोग टी.वी. में अपने मनपसंद कार्यक्रमों को देखने के लिए अपनी समय-तालिका में ही परिवर्तन कर रहे हैं। सबसे बढ़कर लोगों में पहले जो शौक थे, अब गायब हो रहे हैं। किताब और समाचार

पत्रों को पढ़नेवालों की संख्या भी कम हो रही है।

ये सभी आरोप हैं जो इस माध्यम पर लगाए जा रहे हैं। मगर इस माध्यम की संभावनाओं का उपयोग कर सके तो इससे नुकसान की अपेक्षा लाभ ही ज्यादा है। आज दूरदर्शन का उद्देश्य शायद यह हो गया है कि ज्यादातर लोग जिन कार्यक्रमों को देखना पसंद करते हैं, उन्हें प्रसारित करना। ज्यादातर लोग जिन कार्यक्रमों को देखते हैं, उन्हें ही इश्तिहार मिलते हैं जो पैसे भी ला देते हैं। वास्तविकता ऐसी है, फिर भी यह माध्यम जो उपयुक्त कार्य करता है, उसे ठुकराया नहीं जा सकता। दूरदर्शन अन्य माध्यमों की अपेक्षा अत्यंत प्रभावपूर्ण माध्यम है। उदाहरण के लिए सिनेमा को ही ले लीजिए। अगर वह अच्छा नहीं है तो ज्यादा लोग सिनेमा घर नहीं जाते। अगर वही सिनेमा टी.वी. में आ गया तो दर्शकों को दूसरा मार्ग नहीं रहता। इस दृष्टि से टी.वी. से लोगों की अभिरुचि को ही बदला जा सकता है। टी.वी. देखने से लोगों में उदारता आती है, विशालता बढ़ती है; उनकी समझ बढ़ती है; सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं के बारे में उनकी वैचारिकता तीक्ष्ण होती है।

और राजनीति के क्षेत्र में दूरदर्शन का प्रभाव कम नहीं है। अमरीका जैसे देश में जो अध्यक्ष पद के लिए चुनाव लड़ते हैं, वे करोड़ों रुपये खर्च कर टी.वी. द्वारा प्रचार करते हैं। उम्मीदवारों के बीच आपसी चर्चा का भी टी.वी. आयोजन करता है। यह एक प्रकार से उम्मीदवार की सीधे मतदाता के साथ बातचीत करने के समान है। हमारे यहां भी चुनाव के समय राजनीतिक दल टी.वी. द्वारा लोगों को अपने दल के सिद्धांत की जानकारी देते हैं। आजकल टी.वी. में लोकसभा और राज्यसभा की कार्रवाई का प्रसारण हो रहा है, इसलिए आम लोगों को भी राजनीति की गतिविधियों की

जानकारी मिल रही है। चुनाव परिणामों को टी.वी. में देखने के लिए लोग अत्यंत उत्सुकता दिखाते हैं। संक्षेप में, लोगों में जो राजनीतिक समझ बढ़ रही है, उसमें टी.वी. का भी हाथ है।

आजकल तो भारत में दूरदर्शन के साथ-साथ कुछ गैर सरकारी चैनल भी कार्यक्रमों का प्रसारण कर रहे हैं। बी.बी.सी., स्टार टी. वी. आदि विदेशी चैनलों के साथ सन टी.वी., ई टी.वी., बिजिनेस प्लस आदि गैर सरकारी टी. वी. भी हैं। कुछ केबल टी.वी. चलचित्र के समान सिर्फ मनोरंजक कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं।

आज टी.वी. के 30-40 चैनल होते हैं। सभी अलग-अलग कार्यक्रम दिखाते हैं। कोई समाचार प्रसारित करता है तो कोई विज्ञान कार्यक्रम, तो कोई बच्चों के लिए कार्टून दिखाता है।

यहां और एक बात कही जा सकती है। भारत में दूरदर्शन् अभी आरंभिक अवस्था में है। जैसे-जैसे यह बढ़ता जाएगा, उसका प्रभाव और परिणाम भी और ज्यादा स्पष्ट होता जाएगा।

●●●

डी.पी. ग्राफिक्स, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059 द्वारा लेजर सेट होकर शिवम् ऑफसेट प्रेस, नारायणा, नई दिल्ली-110028 द्वारा मुद्रित।